विवेक-शिखा

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा की एकमात्र हिन्दी मासिकी

वर्ष–१७ जनवरी–१९९८ अंक–१

रामकृष्ण निलयम्,
जयप्रकाश नगर, छपरा (बिहार)

विवेक शिखा के आजीवन सदस्य

१५५. श्री विजय कुमार मल्लिक—मुजफ्फरपुर
१५६. श्रीमती गिरिजा देवी—बखरिया (बिहार)
१५७. श्री अशोक कौशिक-मालवीय नगर, (नई दिल्ली)
१५८. रामकृष्ण मिशन विद्यापीठ—देवघर (बिहार)
१५९. श्री रामकृष्ण साधना कुटीर, खण्डवा (म० प्र०)
१६०. श्रीमती आभा रानाडे, अहमदाबाद (म० प्र०)
१६१. श्री डी० एन० थानवी, जोधपुर (राजस्थान)
१६२. श्री सोहन लाल यादव, नाहर कटिया (आ०)
१६३ डा० (श्रीमती) रेखा अग्रवाल, शाहजहाँपुर (उ प्र.)
१६४. डॉ० (श्रीमती) सुनीला मल्लिक—नई दिल्ली
१६५. श्रीरामकृष्ण संस्कृतिपीठ, कामठी (नागपुर)
१६६. कुमारी जसवीर कौर आहूजा, पटियाला, पंजाब
१६७. श्रीमती मंजुला बोर्दिया, उदयपुर (राजस्थान)
१६८. श्रीमती सुदेश, अम्बाला शहर (हरयाणा)
१६९. डॉ० अजय खन्ना (बरेली उ० प्र०)
१७०. श्री एस० टी पुराणिक—नागपुर
१७१. श्री धन्नालाल अमृतलाल सोलंकी, कलवानी
१७२. डॉ० कमलाकांत, वड़ोदा (गुजरात)
१७३. डॉ० विनया पेण्डसे, उदयपुर (राजस्थान)
१७४. सन्तोष बोनी, रामवन (जम्मू एवं कश्मीर)
१७५. श्री राजोभाई बी० पटेल, सूरत (गुजरात)
१७६. श्री प्रकाश देवपुरा—उदयपुर (राजस्थान)
१७७. श्री एस० के० मुन्दरा, जामनगर (गुजरात)
१७८. डॉ० मोहन बन्सल, आनन्द (गुजरात)
१७९. अर्डकियां कन्सलटेन्ट्स, प्रालि० मुम्बई
१८०. सुश्री एस० पी० त्रिवेदी—रोजकोट (गुजरात)
१८१. अद्वैत आश्रम, मायावती—(उ० प्र०)
१८२. श्री शत्रुघ्न शर्मा, फतेहाबाद—(बिहार)
१८३. रामकृष्ण मिशन, शिलांग—(मेघालय)
१८४. श्री त्रिभुवन महतो, राँची—(बिहार)
१८५. रामकृष्ण मिशन आश्रम, राँची—(बिहार)
१८६. श्री आर० के० चोपड़ा, इलाहाबाद—(उ० प्र०)
१८७. श्री श्यामनन्दन सिंह, राँची – (बिहार)
१८८. श्री डी० आर० साहू, रायपुर—(म० प्र०)
१८९. रामकृष्ण मिशन स्कूल, नरोत्तमनगर (अरुणाचल प्र०)
१९०. रामकृष्ण मिशन हॉस्पिटल, इटानगर (अरु० प्र०)
१९१. रामकृष्ण मिशन स्कूल, अलाँग (अरु० प्र०)
१९२. श्री घनश्याम चन्द्राकर, औंधी (म० प्र०)
१९३. श्री भास्कर मढ़रिया, भिलाई (म० प्र)
१९४. स्वामी चिरन्जनानन्द, रा.कृ.मि.नरोत्तमनगर (अ.प्र.)
१९५. श्री हरवंश लाल पहडा, जम्मूतवी (कश्मीर)
१९६. श्री योगेश कुमार जिन्दल, विवेक बिहार (दिल्ली)

इस अंक में

उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत
उठो जागो और लक्ष्य प्राप्त किये बिना विश्राम मत लो।

विवेक शिखा

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द-भावधारा की एकमात्र हिन्दी मासिकी

वर्ष -१७ | जनवरी—१९९८ | अंक—१

इष्टदेव का हृदय-कमल में रूप अनूप दिखा। निजानन्द में रखती अविचल विमल 'विवेक शिखा'॥

सम्पादक :
डा० केदारनाथ लाभ
सहायक सम्पादक :
शिशिर कुमार मल्लिक

सम्पादकीय कार्यालय :
विवेक शिखा
रामकृष्ण निलयम्
जयप्रकाश नगर
छपरा—८४१३०१
(बिहार)
फोन : ०६१५२-२२६३६

सहयोग राशि :

आजीवन सदस्य—	५०० रु०
वार्षिक—	५० रु०
रजिस्टर्ड डाक से—	६५ रु०
एक प्रति—	५ रु०

रचनाएँ एवं सहयोग-राशि संपादकीय कार्यालय के पते पर ही भेजने की कृपा करें।

श्रीरामकृष्ण ने कहा है

(१)

नरेन्द्र नित्यसिद्ध है।—नरेन्द्र ध्यानसिद्ध है—नरेन्द्र के भीतर सदा ज्ञानाग्नि प्रज्वलित रहकर सब प्रकार के भोजनदोष को भस्मीभूत कर देती है। इस कारण यत्र तत्र जो कुछ भी वह क्यों न खाये, उसका मन कभी कलुषित या विक्षिप्त नहीं होगा।— ज्ञान रूप खड्ग से वह समस्त माया-बन्धनों को काट डालता है, इसीलिए महामाया उसे किसी प्रकार वश में नहीं ला सकती।

(२)

मैंने देखा, केशव जिस प्रकार एक शक्ति के विकास के द्वारा संसार में विख्यात हुआ है, नरेन्द्र के भीतर उस प्रकार की अठारह शक्तियाँ पूर्ण मात्रा में विद्यमान हैं। फिर देखा, केशव और विजय का हृदय दीपशिखा के समान ज्ञानके प्रकाश से उज्ज्वल बना हुआ है। बाद में नरेन्द्र के भीतर देखा—ज्ञानसूर्य ने उदित होकर माया-मोह रूप अज्ञान को वहाँ से अपसारित कर दिया है।

(३)

नरेन्द्र-सा एक भी लड़का मुझे अब तक नहीं दिखायी पड़ा! जैसा गाने-बजाने में, वैसा पढ़ने-लिखने में, वैसा ही बातचीत में और फिर धर्म-विषय में भी! वह रात भर ध्यान करता है. ध्यान करते-करते भोर हो जाता है, होश नहीं रहता। मेरे नरेन्द्र के भीतर थोड़ी भी कृत्रिमता नहीं है। बजाकर देखो तो ठन-ठन शब्द होता है······ हँसते खेलते सब काम करता है; पास करना उनके लिए कोई बात ही नहीं। वह ब्राह्मसमाज में भी जाता है, वहाँ भजन गाता है, परन्तु दूसरे ब्राह्मों की तरह नहीं—वह यथार्थ ब्रह्मज्ञानी है। ध्यान करने के लिए बैठते ही उसे ज्योति—दर्शन होता है; उसे मैं यों ही प्यार नहीं करता।

भजन

जय बोलो विवेकानन्द की

—डॉ० केदारनाथ लाभ

जय बोलो विवेकानन्द की
वीरेश्वर शिव सुखकन्द की
जय बोलो विवेकानन्द की।

जय शुद्ध बुद्ध अकलुष अकाम
जय नित्य मुक्त विश्राम धाम
दृढ़ व्रती, यती, स्वच्छन्द की
जय बोलो विवेकानन्द की।

जय घनीभूत भारत स्वरूप
जय मूर्त्त वेद, वेदान्त—रूप
अनुपम अनूप निर्द्वन्द्व की
जय बोलो विवेकानन्द की।

जय विश्वजयी, जय कालजयी
जय अभयमंत्र दाता, विनयी
जय परमपुरुष मधु-छन्द की
जय बोलो विवेकानन्द की।

जय नित्य निरंजन सूर्य प्रखर
आकार रहित नित भास्वर स्वर
ज्योतिर्धर अमलानन्द की
जय बोलो विवेकानन्द की।

जय नित्य-सिद्ध, जय सिद्ध-ध्यान
जय करतलगत विज्ञान-ज्ञान
नर रूप सच्चिदानन्द की
जय बोलो विवेकानन्द की।

दीवार से दिल में, भित्ति से भीतर

मेरे आत्मस्वरूप मित्रो,

विवेक शिखा के समस्त लेखकों--पाठकों और ग्राहकों को नव वर्ष की अनेक-अनेक शुभ कामनाएँ! भगवान् श्रीरामकृष्ण, श्री माँ सारदा देवी और स्वामी विवेकानन्द की कृपा और आशीर्वाद की आप सब पर निरन्तर वृष्टि होती रहे, आपका सर्वतोभावेन मंगल हो तथा आपको चैतन्य की प्राप्ति हो—यही उनसे मेरी आन्तरिक प्रार्थना है।

विवेक शिखा इस अंक के साथ ही अपने सतरहवें वर्ष में प्रवेश कर रही है। अनेक आपदाओं, विपदाओं और अनियमितताओं के बावजूद यह स्वामीजी की कृपा से अब तक 'नॉट आउट' रही है। मैं उनके समक्ष प्रणत हूँ। आप सबका सहयोग हर हाल में इस शिखा को प्रज्वलित रखने के लिए मिलता रहा है। मैं आपको नमन् करता हूँ। भविष्य में भी आपका सहयोग मिलता रहेगा—यह विश्वास है।

आज हम एक विचित्र संक्रमण की स्थिति से गुजर रहे हैं। संचार माध्यमों—सिनेमा, टी०वी० और विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं के द्वारा हमारे समक्ष आज एक हॉट फुड की भाँति अपसंस्कृति परोसी जा रही है। हमारे अनेक युवजन उससे प्रभावित हो दिग्भ्रमित हो रहे हैं। सामाजिक-न्याय एक खोखला नारा बन गया है। अठारह महीनों में तीन-तीन सरकारें केन्द्र में अपदस्थ हो गयी हैं। भ्रष्टाचार में बड़े-बड़े नेतागण—प्रधान मंत्री से मुख्यमंत्री तक—आकंठ लिप्त पाये जा रहे हैं। घपलों-घोटालों, खोखले नारों-हड़तालों, भ्रष्टाचारों-पापाचारों से देश की अंतरात्मा कराह उठी है। स्वार्थ सिर पर चढ़कर बोलता है। राष्ट्रीयता पीछे छूट गयी है। पूरे तंत्र में कोई घुन लग गया है। देश की स्वाधीनता के पचासवें वर्ष में हमने जो पाया उससे अधिक खोया है। सारा देश जैसे बीमार हो गया है। क्या उपाय है इस रोग से, इस सराँध से मुक्त होने का? कहाँ है स्वामीजी की वाणी का जादू?

मुझे एक घटना की याद आ रही है। कई वर्ष पूर्व मैं एक मंत्री (मिनिस्टर) के आवास पर उनसे मिलने गया था। उनका बाह्य व्यक्तित्व आकर्षक था। उनके व्याख्यान ओजस्वी होते थे। मैं उनसे प्रभावित था। उनके आवासीय बैठक खाने में जाते ही देखा—दीवार पर स्वामी विवेकानन्द की एक बड़ी-सी भव्य तस्वीर टँगी थी। एक राजनेता के कमरे में स्वामी जी की तस्वीर देखकर मैं सहज ही आह्लादित हो उठा। विस्मय भरे स्वरों में मैंने उक्त मंत्रीजी से कहा—"वाह, स्वामीजी की आपने भव्य तस्वीर लगा रखी है।" मंत्री जी ने प्रसन्नता भरे शब्दों में स्वामीजी की भूरि-भूरि प्रशंसा करते हुए कहा था कि वे स्वामी जी से अपने छात्र जीवन से ही अत्यन्त प्रभावित रहे हैं। वे उनके परम भक्त हैं। उनके व्यक्तित्व निर्माण में स्वामी जी के आदर्शों का बड़ा योगदान है आदि आदि। कुछ दिनों बाद मुझे उनकी चारित्रिक दुर्बलताओं के विषय में कई विश्वसनीय व्यक्तियों द्वारा अनेक प्रकार की विस्मय भरी बातें सुनने को मिलीं। विरोधी दल के एक राजनेता की हत्या में भी उनका हाथ होने की चर्चा हुई थी। मैं तो हैरान था यह सब सुनकर। क्या स्वामीजी की तस्वीर इतनी श्रद्धा से अपने कमरे की दीवार पर टाँगनेवाला व्यक्ति इतने निम्न चरित्र का हो सकता है?

कई दिनों तक मैं इस विषय पर सोचता रहा। फिर मैं इस नतीजे पर पहुँचा कि कई लोग तो भगवान की तस्वीर दीवार पर लगाकर कदाचार में लिप्त रहते हैं। इन्होंने तो स्वामीजी की ही तस्वीर लगा रखी है।

सचमुच, स्वामीजी मात्र दीवार पर टाँगने की, कमरे के अलंकरण की वस्तु नहीं हैं। वे हैं दीवार सजाने की अपेक्षा अपने दिल में उतारने की वस्तु। वे हैं भित्ति को सुशोभित करने की अपेक्षा अपने भीतर को सँवारने की वस्तु। स्वामीजी का व्यक्तित्व मोहक है, भव्य है, दिव्य है। वे हमारे नेत्रों को लुभाते हैं। हम उनकी एक तस्वीर अपने कमरे की दीवार पर टाँग कर प्रसन्नचित हो जाते हैं। किन्तु इससे हमारे व्यक्तित्व में कोई रूपान्तरण नहीं होता। हमारे जीवन में कोई बदलाव नहीं आता। हम जस के तस रह जाते हैं।

आज जरूरत इस बात की है कि हम स्वामीजी को गंभीरता से ग्रहण करें। उन्हें पूरे मनोयोग से पढ़ें और गहराई से अपनावें। कम-से-कम उनके भारतीय व्याख्यानों को पढ़ें और उनके विचारों पर मनन करें। यदि उनके विचार हमें रुचें तो हम उन्हें अपने जीवन में उतारें। जिन्होंने ऐसा किया वे हमारे राष्ट्रपुरुष हो गये। महात्मा गाँधी, लोकमान्य तिलक, पंडित जवाहर लाल नेहरू आदि ने उनका गहन अध्ययन किया था। और इन सब ने स्वीकारा है कि स्वामीजी ने उनके जीवन में गहन राष्ट्रीयता और प्रबल राष्ट्र-प्रेम की भावना सौगुणी अधिक बढ़ा दी।

आज हम स्वामीजी को पढ़ते हैं कम, उनकी तस्वीरे टाँगते हैं ज्यादा। अगर पढ़ते भी हैं तो उन्हें ग्रहण करते हैं कम अपना गौरव बढ़ाते हैं ज्यादा। इससे देश को, हमारे नेताओं को और विशेष कर युवकों को कोई विशेष प्रेरणा नहीं मिलती। कोई विशेष लाभ नहीं होता। स्वामीजी अपनी आकृति से अधिक अपने सन्देशों में जीवन्त हैं। उन्होंने कहा था—'मैं एक निराकार आवाज हूँ।' इस निराकार आवाज को सुनने की आवश्यकता है। स्वामीजी ने चेतावनी भरे शब्दों में कहा था—"अपने भाइयों का नेतृत्व करने का नहीं, वरन उनकी सेवा करने का प्रयत्न करो। नेता बनने की इस क्रूर उन्मत्तता ने बड़े-बड़े जहाजों को इस जीवन रूपी समुद्र में डुबो दिया है।"

हम डूब रहें हैं। हम सो गये हैं। स्वामीजी की घोषणा है—"उठो, जागो, और लक्ष्य प्राप्त किये बिना रुको मत।" मगर आज हम सो गये हैं। हमें उठना होगा, जागना होगा। भारत को बचाने के लिए, एक नया भारत गढ़ने के लिए हमें स्वामीजी का यह आह्वान सुनना ही होगा—"भारत के दीन-दुखियों के साथ एक होकर गर्व से पुकार कर कहो,—'प्रत्येक भारतवासी मेरा भाई है, भारतवासी मेरे प्राण हैं, भारत की देव-देवियाँ मेरे ईश्वर हैं, भारत का समाज मेरे बचपन का झूला, जवानी की फुलवारी और बुढ़ापे की काशी है।' भाई कहो कि भारत की मिट्टी मेरा स्वर्ग है, भारत के कल्याण में मेरा कल्याण है और रात-दिन तुम्हारी यह रट लगी रहे—हे गौरीनाथ, हे जगदम्बे, मुझे मनुष्यत्व दो। माँ, मेरी दुर्बलता और कापुरुषता दूर कर दो। माँ मुझे मनुष्य बना दो।" यदि एक इस वाणी को ही हमने अपने जीवन में उतार लिया तो यह देश पुनः विश्व-विजेता हो जायेगा।

स्वामी विवेकानन्द का पत्र

(श्रीमती मृणालिनी बसु को लिखित)

देवघर, वैद्यनाथ
३ जनवरी, १८९८

माँ,

तुम्हारे पत्र में कई एक अति कठिन प्रश्नों का जिक्र हुआ है। एक छोटे से पत्र में उन सब प्रश्नों का विस्तार पूर्वक उत्तर देना सभव नहीं, परन्तु बहुत संक्षेप में उत्तर लिखता हूँ।

(१) ऋषि, मुनि या देवता, किसी की सामर्थ्य नहीं कि वे समाजिक नियमों का प्रवर्तन करें। जब समाज के पीछे किसी समय की आवश्यकताओं का झोंका लगता है तब वह आत्मरक्षार्थ आप-ही-आप कुछ आचारों की शरण लेता है। ऋषियों ने केवल उन आचारों को एकत्र कर दिया है, बस। जैसे आत्मरक्षा के लिए मनुष्य कभी-कभी बहुत से ऐसे उपायों का प्रयोग करता है जो उस समय के लिए तो रक्षा पाने के उपयोगी हों परन्तु भविष्य के लिए बड़े ही अहितकर ठहरें, वैसे हीं समाज भी बहुत अवसरों पर उस समय के लिए तो बच जाता है, पर जिस उपाय से वह बचता है वही अन्त में भयंकर हो जाता है।

जैसे, हमारे देश में विधवा विवाह का निषेध। ऐसा न सोचना कि ऋषियों या दुष्ट पुरुषों ने उन नियमों को बनाया है। यद्यपि पुरुष स्त्रियों को पूर्णतया अपने अधीन रखना चाहते हैं तो भी बिना समाज की सामयिक आवश्यकता की सहायता लिये वे कभी कृतकार्य नहीं होते। इन आचारों में से दो विशेष ध्यान देने योग्य हैं—

(क) नीच जातियों में विधवा-विवाह होता है।

(ख) उच्च जातियों में पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों की संख्या अधिक है।

अब यदि हर एक लड़की का विवाह करना ही नियम हो तो एक-एक लड़की के लिए एक-एक पति मिलना ही मुश्किल है, फिर दो-तीन कहाँ से आये? इसीलिए समाज ने एक तरफ की हानि कर दी है; यानि जिसको एक बार पति मिल गया है उसको वह फिर पति नहीं देता; अगर दे तो एक कुमारी को पति नहीं मिलेगा। दूसरी तरफ देखिये कि जिन जातियों में स्त्रियों की कमी है उनमें ऊपर लिखी बाधा न होने से विधवा-विवाह प्रचलित है। उसी प्रकार जातिभेद तथा अन्यान्य समाजिक आचारों के विषय में भी सोचना चाहिए।

पाश्चात्य देशों में कुमारियों को पति मिलना दिन पर दिन कठिन होता जा रहा है। यदि किसी समाजिक आचार को बदलना हो तो पहले यही ढूढ़ना चाहिए कि उस आचार की जड़ में क्या आवश्यकता है; और केवल उसी के बदलने से वह आचार आप ही आप नष्ट हो जायगा। ऐसा किये बिना केवल निन्दा या स्तुति से काम नहीं चलेगा।

(२) अब प्रश्न यह है कि क्या समाज के बनाये हुये थे नियम, अथवा समाज का संगठन ही

उस समाज के जनसाधारण के हितार्थ है ? बहुत से लोग कहते हैं कि हाँ, पर कोई कहते हैं कि ऐसा नहीं, कुछ मनुष्य औरों की अपेक्षा अधिक शक्ति प्राप्त कर दूसरों को धीरे-धीरे अपने अधीन कर लेते हैं और कुछ बल या कौशल से अपना मतलब हासिल कर लेते हैं। यदि यह सच है तो इस बात का क्या अर्थ है कि अशिक्षित मनुष्यों को स्वाधीनता देने में डर रहता है ? और फिर स्वाधीनता का अर्थ ही क्या है ?

मेरे आपका धन आदि छीन लेने में कोई बाधा न रहने का नाम तो स्वाधीनता है नहीं, बल्कि तन, मन या धन का बिना दूसरों को हानि पहुँचाये, इच्छानुसार उपयोग करने ही का नाम स्वाधीनता है। यह तो मेरा स्वाभाविक अधिकार है और उस धन, विद्या या ज्ञान को प्राप्त करने में समाज के अन्तर्गत प्रत्येक व्यक्ति को समान सुविधा चाहिए। दूसरी बात यह है कि जो लोग कहते हैं कि अशिक्षित या गरीब मनुष्यों को स्वाधीनता देने से अर्थात् उनको अपने शरीर और धन आदि पर पूरा अधिकार देने तथा उनके वंशजों को धनी और ऊँचे दर्जे के आदमियों के वंशजों की भाँति ज्ञान प्राप्त करने एवं अपनी दशा सुधारने में समान सुविधा देने से वे उन्मार्गगामी बन जायेंगे, तो क्या वे समाज की भलाई के लिए ऐसा कहते हैं अथवा स्वार्थ से अन्धे होकर ? इंगलैंड में भी मैंने इस बात को सुना है कि अगर नीच लोग लिखना पढ़ना सीख जायेंगे तो फिर हमारी नौकरी कौन करेगा ?

मुट्ठीभर अमीरों के विलास के लिए लाखों स्त्री-पुरुष अज्ञता के अन्धकार और आभाव के नरक में पड़े रहें ! क्योंकि उन्हें धन मिलने पर या उनके विद्या सीखने पर समाज डाँवाडोल हो जायगा !!

समाज है कौन ? वे लोग जिनकी संख्या लाखों है ? या आप और मुझ जैसे दस-पाँच उच्च श्रेणीवाले !!

यदि यह सच भी हो तो भी आप और मुझमें ऐसा घमण्ड किस बात का है कि हम और सब लोगों का मार्ग बतायें ? क्या हमलोग सर्वज्ञ हैं ?

"उद्धरेदात्मनाऽत्मानम्"—आप ही अपना उद्धार करना होगा। सब कोई अपने आपको उबारे। सभी विषयों में स्वाधीनता यानि मुक्ति की ओर अग्रसर होना ही पुरुषार्थ है। जिससे और लोग दैहिक, मानसिक और आध्यात्मिक स्वाधीनता की ओर अग्रसर हो सकें, उसमें सहायता देना और स्वयं भी उसी तरफ बढ़ना ही परम पुरुषार्थ है। जो सामाजिक नियम इस स्वाधीनता के स्फुरन में बाधा डालते वे ही अहितकर हैं और ऐसा करना चाहिए जिससे वे जल्द नाश हो जायें। जिन नियमों के द्वारा सब जीव स्वाधीनता की ओर बढ़ सकें उन्हीं की पुष्टि करनी चाहिए।

इस जन्म में दर्शन होते ही किसी व्यक्ति विशेष पर चाहे वह वैसा गुणवान भले ही न हो—हमारा जो हार्दिक प्रेम हो जाता है इसे हमारे यहाँ के पंडित लोगों ने पूर्वजन्म का ही फल बताया है। इच्छाशक्ति के बारे में तुम्हारा प्रश्न बड़ा ही सुन्दर है और यही समझने योग्य विषय है। वासनाओं का नाश सभी धर्मों का सार है पर इसके साथ ही इच्छा का भी निश्चय नाश हो जाता है, क्योंकि वासना तो इच्छा विशेष ही का नाम है। अच्छा तो यह जगत् क्यों हुआ ? और इन इच्छाओं का विकास ही क्यों हुआ ? कई एक धर्मों का कहना है—बुरी इच्छाओं का ही नाश होना चाहिए, न कि सदिच्छाओं का। इस लोक में वासना का त्याग परलोक में भोगों के द्वारा पूर्ण हो जायगा। अवश्य पंडित लोग इस उतर से संतुष्ट नहीं हैं। दूसरी तरफ बौद्ध लोग कहते हैं

श्रीरामकृष्ण का नरेन्द्र

श्रीमत् स्वामी भूतेशानन्दजी महाराज

[श्रीरामकृष्ण एवं स्वामी विवेकानन्द—दोनों के बीच ऐसा एक अकाट्य सम्बन्ध विद्यमान है जिसके माध्यम-बिना हम उन दोनों में किसी को समझ नहीं पाते। श्रीरामकृष्ण को जानना हो तो जिस प्रकार स्वामीजी के जीवन और चिन्तन के प्रकाश से देखना होगा, उसी प्रकार स्वामी विवेकानन्द को समझना हो तो श्रीरामकृष्ण की वाणी और जीवन का आश्रय लेना होगा। वास्तव में स्वामी विवेकानन्द को श्रीरामकृष्ण ने जैसे पहचाना था उस तरह श्री श्री माँ को छोड़कर और किसी ने नहीं पहचाना था वैसे ही स्वामी जी श्रीरामकृष्ण को जिस तरह जान सके थे, उनके और किसी गुरुभाई ने उस तरह नहीं पहचाना था। नरेन्द्रनाथ से स्वामी विवेकानन्द—इस महान परिवर्तन के प्रत्येक स्तर में श्रीरामकृष्ण की अपनी स्वयं की परिकल्पना एवं व्याकुलता थी। स्वामी जी का सम्पूर्ण कर्म, साधना, चिन्तन एवं वाणी के पीछे अनिवार्य रूप से श्रीरामकृष्ण ही थे और था उनका प्रभाव। रामकृष्ण मठ एवं रामकृष्ण मिशन के अध्यक्ष परम पूज्यपाद श्रीमत् स्वामी भूतेशानन्द जी महाराज ने इस सत्य को अत्यन्त प्रांजल भाव से इस निबन्ध में व्याख्यायित किया है। अनुवादक हैं रामकृष्ण मिशन, नरोत्तम नगर में कार्यरत स्वामी चिरन्तनानन्द। —सं०।]

स्वामी जी के कलकत्ता-प्रत्यावर्तन की शतवर्ष जयन्ती आ गयी। सन् १८९० ई० के जुलाई मास में वे कलकत्ता से तपस्या के उद्देश्य से बाहर निकले थे। उसके बाद वे कलकत्ता वापस आये थे शिकागो धर्ममहासभा में ऐतिहासिक सफलता के बाद १९ फरवरी, १८९७ को। कलकत्ता से वे किस दिन बाहर निकले थे वह तारीख ठीक-ठीक ज्ञात नहीं है। सभी के अज्ञात में निःसंबल परिव्राजक के वेश में वे बाहर निकले थे। उनके बाहर निकलने का संवाद मात्र श्री श्री माँ एवं गुरुभाईगण ही जानते थे। किन्तु जिस दिन वापस आये उस दिन वे विश्वविजयी थे, तब विश्वविख्यात व्यक्तित्व था उनका। इतिहास में उनके कलकत्ता आगमन का दिन १९ फरवरी चिरस्मरणीय हो गया है। हजारों लोगों की विपुल अभ्यर्थना द्वारा वंदित होकर वे वापस आये। उनके आगमन से पूरे देश में एक महान हलचल शुरू हुई। परन्तु जो विवेकानन्द भारत-परिक्रमा के लिए निकले थे एवं जो शिकागो धर्म महासभा में इतिहास-सृष्टि करके देश में वापस आ गए वे निश्चित ही श्रीरामकृष्ण के नरेन्द्र हैं।

स्वामी जी के जीवन के विभिन्न पक्षों को लेकर अब पंडितगण गवेषणा कर रहे हैं एवं सभी जान पा रहे हैं कि उनके व्यक्तित्व में कितनी विचित्रता थी, कितना बहुमुखी व्यक्तित्व था उनका। हमलोग समझ पा रहे हैं कि उनके जीवन एवं चरित्र के सम्बन्ध में अभी भी बहुत कुछ चर्चा करने को है, जो अभी तक विवेचित ही नहीं

हुआ है। उनका व्यक्तित्व इतना विचित्र है कि उनके सम्बन्ध में जब हम चर्चा करने लगते हैं तब ऐसा लगता है कि हमारी सामर्थ्य मात्र सीमित ही नहीं, उनके व्यक्तित्व की विशालता का नाप करना हमारे लिए दुःसाध्य भी है। हमारी बुद्धि उनके व्यक्तित्व का उद्घाटन करने में समर्थ नहीं है। फिर भी, जितनी उनके संबंध में चर्चा करेंगे, जितना हम उनको विभिन्न पहलुओं के माध्यम से समझने की चेष्टा करेंगे— उतना हमारे व्यक्तिगत जीवन में एवं देश एवं विश्व के समष्टिगत जीवन में कल्याण होगा इसमें सन्देह नहीं।

ठाकुर कहते थे, केशव के भीतर यदि एक सूर्य प्रकाशित है तो नरेन के भीतर इस प्रकार के अठारह सूर्य प्रकाशित हो रहे हैं। ठाकुर की बातों में किसी तरह की अस्पष्टता नहीं है। उन्होंने 'अठारह सूर्य' कहा था। अब उस अठारह सूर्य को हम किसी दिन विश्लेषण करके जान सकेंगे या नहीं, पता नहीं! उनकी दृष्टि इतनी सूक्ष्म, इतनी भ्रान्तिहीन थी कि उस अठारह को उन्होंने निश्चय ही एकदम साफ-साफ देखा था। किन्तु हम यदि स्वामी जी के अठारह सूर्य तुल्य व्यक्तित्व के सम्पर्क में चर्चा करने जाएँ तो हमारे द्वारा मात्र कल्पना द्वारा पक्ष विस्तार करना ही होगा। फिर वह अत्यन्त स्पष्ट होगा ऐसा भी नहीं। उसके भीतर फिर अनेक मतभेद भी रहेंगे। इसीलिए शायद इसकी चेष्टा अब तक किसी ने नहीं की। हम भी इस विषय में चेष्टा नहीं कर रहे हैं, इसकी सामर्थ्य भी हम लोगों में नहीं है। और उनके जीवन के जितने सब तथ्य आज तक प्रकाशित हुए हैं वे भी शायद उनके जीवन का विश्लेषण करने के लिए यथेष्ट नहीं है। नये-नये तथ्य आज भी आविष्कृत हो रहे हैं, नये-नये गवेषक अपनी स्वयं की बुद्धि एवं दृष्टिभंगी से चर्चा कर रहे हैं। उनकी प्रतिभा की, उनके व्यक्तित्व की और भी कितने पहलुओं की चर्चा होगी, कौन जानता है!

स्वामी विवेकानन्द को पहचाना था श्रीरामकृष्ण ने और श्रीरामकृष्ण को जाना था स्वामी विवेकानन्द ने। दोनों के बीच ऐसा एक अकाट्य संबन्ध विद्यमान है जिसके माध्यम के विना हम उनकी महानता समझ नहीं पाते। श्रीरामकृष्ण नरेन्द्र के लिए इतने व्याकुल होते थे कि उनको न देखने से उनकी छाती के भीतर ऐसी व्यथा होती मानो कोई अंगोछा निचोड़ रहा हो, मानो बिल्ली नाखून से खरोंच रही है! उन्होंने ये सब शब्द प्रयोग किये थे। फिर नरेन भी तूफान-बरसात की परवाह न करके कलकत्ता से दक्षिणेश्वर में श्रीरामकृष्ण के चरणकमलों पर दौड़े चले आते थे।

स्वामी विवेकानन्द का स्वयं के संबंध में एक मूल्यांकन है। उन्होंने कहा था, "विवेकानन्द जो कर गया है, उसे एक और विवेकानन्द होने से वह समझ पाता।" इससे और अधिक सुन्दर मूल्यांकन और हो नहीं सकता। इससे अधिक सुन्दर ढंग से स्वामी जी के व्यक्तित्व का वैशिष्ट्य और कहा नहीं जा सकता। और एक विवेकानन्द की जरूरत है उनको जानने के लिए। हम लोग तो विवेकानन्द हैं नहीं, अतः विवेकानन्द को हम समझ सकेंगे नहीं।

स्वामी जी बचपन से ही दुर्दान्त थे। श्रीरामकृष्ण कहते हैं, वे सब में ही चतुर थे—ध्यानसिद्ध थे, फिर जब छत पर दौड़ा-दौड़ी करते तो, उनका अलग चेहरा होता। बातों में उनसे किसी के जीतने का उपाय नहीं था। कचकच करके सब की बातों को काट देते, इस संबंध में वे श्रीरामकृष्ण को भी नहीं छोड़ते थे। श्रीरामकृष्ण अवश्य इससे विरक्त नहीं होते थे—हँसते, आनन्द पाते थे। जो

उस्ताद पहलवान हैं—उनके चेलों, शागिर्दों को सिखाने के समय देखा जाता है कि कभी-कभी वे भी हार मानते हैं। क्योंकि इससे उनके शागिर्दों में आत्मविश्वास आयेगा। ठाकुर ने नरेन की युक्तियों की बहुत प्रशंसा की हैं। फिर कभी-कभी जरूरत पड़ने पर थोड़ी सी मानो रास खींच लेते थे।

शिष्यों को तैयार करने के संबंध में ठाकुर की अपनी विशिष्टता थी, एक विशेष क्रम था। वे उन लोगों को कभी निरुत्साहित नहीं करते थे बल्कि प्रत्येक को अपने निज-निज भाव से बढ़ जाने के लिए उत्साह देते। फिर कभी विच्युति अथवा भूल संशोधन की आवश्यकता होने पर अत्यन्त स्नेह के साथ वह भी करते थे। किन्तु स्नेह के साथ करते इसलिए आवश्यकतानुसार कठोर होते नहीं थे यह भी नहीं। नरेन्द्र के साथ उनका कितना प्रेमपूर्ण व्यवहार था तथापि बीच-बीच में वे एक कठोर आवरण तैयार कर कठोर शिक्षक की भाँति व्यवहार करते हैं और जरूरत होने पर भर्त्सना भी करते हैं। परन्तु इसके लिए मन में आघात पाने की कोई गुंजाइश नहीं थी, ऐसा था उनका स्नेह !

नरेन्द्रनाथ के संबंध में कितनी प्रकार से उन्होंने वर्णन किया था ! मानो किसी भी तरह से उनको तृप्ति नहीं हो रही है ! "सप्तर्षियों में एक ऋषि" कहते हैं। कहते हैं, 'अखण्ड के घर का' और कहते हैं, "वह मेरी ससुराल है।''''कितनी ही बातें कहते हैं। और उनके रूप-गुण आदि की। वर्णन तो मानो शतमुख से कहने पर भी उन्हें तृप्ति नहीं हो रही है। नरेन्द्रनाथ स्वयं ही अवाक् हो जाते। ठाकुर की बातें उन्हें इतनी अधिक अतिशयोक्ति लगती कि कभी-कभी उन्हें संदेह होता, वे प्रकृतिस्थ तो हैं ! ठाकुर नरेन्द्र को बोले थे, "तुम साक्षात नारायण हो ! जीवों के दुःख में कातर हो देहधारण कर आये हो।" नरेन्द्रनाथ को लगा था—"मैं विश्वनाथ दत्त का लड़का-मुझे वे क्या कहते हैं, मैं नारायण हूँ।" परन्तु विचार करके देखा है, उनके व्यवहार में किसी प्रकार की अप्रकृतिस्थता का कोई चिह्न नहीं है फिर भी मानना नहीं चाहते ! एक दिन कहा था, "देखिये, आपकी दशा राजा जड़भरत के समान होगी। हिरण का चिन्तन कर-करके, हिरण को स्नेह करके राजा भरत को अंत में हिरण का जन्म लेना पड़ा था ! आप 'नरेन-नरेन' करके अन्त में आपकी भी इसी तरह स्थिति होगी।" बालक स्वभाव श्रीरामकृष्ण सोच में पड़ गये। अन्य लोग कौन क्या कहते हैं इसके लिए उन्हें कोई सिर दर्द नहीं है परन्तु नरेन ने यह बात कही है ! नरेन तो साधारण व्यक्ति नहीं है। ठाकुर के मन में कुछ संशय उदित होने से उसके अपसारण के लिए एक उपाय था— माँ के पास, माँ भवतारिणी के पास जाना, उनको पूछना। माँ के पास जाकर उन्होंने पूछा, "माँ, नरेन ऐसा कहता है !" माँ ने कहा, "वह क्या जानता है— वह तो छोटा लड़का है ! तुम उसके भीतर में नारायण को देखते हो इसलिए उसे इतना प्यार करते हो।" ठाकुर निश्चिन्त हो गए। फिर निश्चिन्त होकर नरेन से कहा, "जा साला, तुम्हारी बात और मैं नहीं सुनूँगा। माँ ने मुझसे कह दिया है तुम्हारे भीतर मैं नारायण को देखता हूँ इसलिए तुमको इतना प्यार करता हूँ। जिस दिन तुम्हारे भीतर नारायण को नहीं देख पाऊँगा उस दिन तुम्हारा मुँह भी नहीं देख सकूँगा।"

ठाकुर के पास से नरेन्द्र ने जितना आदर पाया है उतना और किसी ने नहीं पाया है। नरेन्द्र ने इसे शतमुख से स्वीकार भी किया है। उन्होंने कहा था, "श्रीरामकृष्ण ने जिस प्रकार प्यार किया था, जिस प्रकार अगाध विश्वास मेरे ऊपर रखा था, उस प्रकार और किसी ने नहीं

किया। उस प्रकार का प्रेम एवं विश्वास करना और किसी के लिए संभव नहीं है।" यह जो नरेन्द्र के प्रति उनका स्नेह एवं प्यार, यह मात्र नरेन्द्रनाथ एक असाधारण आधार हैं, इसलिए नहीं, बल्कि ईश्वर का जो कार्य करने के लिए श्रीरामकृष्ण अपने अवतार रूप में आविर्भूत हुए थे, उसी आदर्श का धारक एवं वाहक बने नरेन्द्रनाथ, एवं उस कार्य के लिए इस तरह सुयोग्य पात्र और कोई नहीं होगा, इसीलिए इतना स्नेह। बचपन से ही स्वामी जी का वैशिष्ट्य था कि सब जगह वे नेता होते। क्या खेल, क्या पढ़ना-लिखना, क्या किसी प्रकार का संगठन—सर्वत्र नेता होते। उसके के लिए नेतृत्व ही, शीर्षस्थान ही निर्दिष्ट था। यह उनके लिए स्वाभाविक था।

स्वामी जी को साधारण दृष्टि से देखने पर लग सकता है कि वे महान तार्किक हैं। कभी-कभी वे अत्यन्त संशयी भी जान पड़ते हैं। कभी वे अहंकारी जान पड़ते हैं। सभी के ऊपर प्रभुत्व करने के लिए मानो वे सदैव तत्वर हैं। कभी-कभी वे स्वयं इन सब के विपरीत लगते। यह सब हमारे आंशिक अनुभव के लिए हुआ करता है। प्रश्न उपस्थित होता है कि वे भक्त हैं या ज्ञानी? कभी लगता उनमें भक्ति ही प्रधान है—उनका भीतरी भाग भक्ति से भरपूर है। फिर कभी लगता कि वे मात्र ज्ञानी ही हैं। वास्तव में हम उनको समझ नहीं पाते हैं। यथार्थ में वे भक्त भी हैं और ज्ञानी भी। फिर वे इन दोनों के परे भी हैं। वे अद्वैतवादी हैं। वे "ज्ञानी है का मतलब शुष्क ज्ञानी नहीं। ज्ञानी मतलब उन्होंने विचार को ग्रहण किया है किन्तु उस विचार की मूलवस्तु या तत्त्व के अन्वेषण के लिए जो विचार है उसे गीता में 'वाद' कहा गया है। उन्होंने इसी 'वाद' का अनुसरण किया है। आँख बंदकर ग्रहण करना—जिसे 'अन्ध गो-लांगुल न्याय' कहते हैं। अर्थात् आँख बन्द कर जानवर की पूँछ पकड़कर वैकुंठ जाने के समान झूठी धर्मधारणा का उन्होंने उपहास किया है। कहा है, जो करो विचार करके करो, देख लेना, जाँच-परखकर लेना। यह उन्होंने सीखा है श्रीरामकृष्ण के पास से। श्रीरामकृष्ण ने उपदेश दिया है, "मैं जो बोलूँगा—"मैं बोल रहा हूँ इसलिए वह ग्रहण नहीं कर लेना। उसे जाँच-परख लेना जो युक्तियुक्त होगा। वही ग्रहण करना, नहीं तो नहीं करना।" "किसी ने नरेन्द्र से कहा था, "वे जब बोल रहे हैं तब मान ही लो न।" श्रीरामकृष्ण ने तुरन्त ही तीव्र रूप से तिरस्कार करते हुए कहा था, "यह फिर कैसी बात? मैं बोल रहा हूँ इसलिए मान लेना क्यों? प्रत्येक बात देख लेना, जाँच-परखकर लेना।" इस बात का स्वामी जी ने अक्षरशः पालन किया। श्रीरामकृष्ण की बातों को भी उन्होंने जाँच लिया था। उन्होंने कहा है, "गुरु के साथ लड़ाई शायद मेरे समान, और किसी शिष्य ने कभी भी नहीं की है। उनके साथ संघर्ष किया हूँ एवं संघर्ष के फलस्वरूप हो सकता है हार माना हूँ परन्तु संघर्ष करना छोड़ा नहीं। अर्थात् एक शब्द में कहें तो स्वामी जी एवं ठाकुर दोनों ही पराभव स्वीकार करने के पक्ष में नहीं थे। वे दोनों ही एक धातु से निर्मित थे। सब समय स्वामी जी ने ठाकुर के साथ लड़ाई की है। लड़ाई करके गुरु की प्रत्येक उक्ति का तात्पर्य हृदयंगम किया है। इसीलिए श्रीरामकृष्ण के संबंध में उनकी अनुभूति दूसरों की अपेक्षा कितनी गहन है! ठाकुर की उन्होंने बार-बार परीक्षा ली है जो हम लोगों के मन में गुरुभक्ति के विरुद्ध लगेगा या गुरुभक्ति के लिए हानिकर महसूस होगा। ठाकुर रुपया-पैसा स्पर्श नहीं कर सकते थे—स्वामी जी ने ठाकुर के बिस्तर के नीचे रुपया छिपाकर

देखा है कि यह सत्य है या नहीं ? देखा था—सत्य ही है। ठाकुर नरेन्द्र द्वारा इस परीक्षा की बात नहीं जानते थे, किन्तु बिस्तर स्पर्श करते ही वे बिच्छू के डंक मारने से जैसा होता है, वैसे ही छटपटाकर उठ गए। इसके बाद देखा गया—बिस्तर के नीचे रुपया ! ठाकुर ने एकबार एक स्थान पर पानी पीना चाहा। किसी ने आकर एक गिलास पानी दिया, परन्तु वे वह पानी पी नहीं सकें। उनके भक्तगण जानते थे, ठाकुर असत् व्यक्ति द्वारा छुई वस्तुओं को ग्रहण नहीं कर सकते थे परन्तु जिस व्यक्ति ने जल लाया उसे देखने से ऐसा लगा था कि वह परम धार्मिक है। स्वामी जी के मन में संशय हुआ अतः पूछताछ कर खबर लेने लगे। पता चला—ठीक ही है, वह व्यक्ति बाहर से खूब धार्मिक दिखने से भी उसका चरित्र अच्छा नहीं था।

इस प्रकार स्वामीजी ने ठाकुर के प्रत्येक आचरण एवं वाणी को परीक्षा किये बिना ग्रहण नहीं किया एवं उन सबका गहराई से चिन्तन करके उनके तत्त्व का उद्घाटन किया। स्वामी जी का यह वक्तव्य उल्लेखनीय है—"ठाकुर की एक-एक बात से टोकरी-टोकरी भर दर्शन ग्रंथ लिखा जा सकता है।' एक गुरुभाई ने यह सुनकर कहा 'कहाँ, ठाकुर की इस तरह के गंभीर तात्पर्यपूर्ण बातों को हम लोग तो समझ नहीं पा रहे हैं।' तब स्वामी जी ने कहा—"ठाकुर की जिस किसी भी बात को लो—हाथी नारायण एवं महावत नारायण की बात ही लो," यह कहकर वे इसका तात्पर्य समझाने लगे। सात दिन तक उसका तात्पर्य समझाना चलता रहा। जिन्हें वे समझा रहे थे उन सबने सुनकर कहा, "इसके भीतर इतने तथ्य हैं यह तो हम लोग नहीं जानते थे।" बातचीत तो सभी सुनते हैं परन्तु उन बातों का जो गंभीर तात्पर्य है, वह कितने लोग समझते हैं ? स्वामी जी ठाकुर की प्रत्येक बात का अत्यन्त गंभीरतापूर्वक चिन्तन करते एवं जब प्रयोजन होता तब उसके तात्पर्य का उद्घाटन करते। कहना न होगा कि जिसने स्वामी जी के भाषणों को पढ़ा है उन लोगों को यह एक बात विशेषकर जाननी होगी कि वहां पर एक भी ऐसी बात नहीं हैं जिसका ठाकुर की उक्तियों के साथ सामंजस्य नहीं हैं। प्रत्येक बात का विश्लेषण करने से देखा जाएगा कि ठाकुर की किसी न किसी उक्ति के साथ उसका मेल है एवं वे ही उक्तियाँ हैं सूत्र—जिनका अवलम्बन करके विस्तार करके आधुनिक मन के उपयोगी बनाकर स्वामी जी ने सुललित भाषा में व्यक्त किया। ये जो ठाकुर की उक्तियाँ एवं भावों की विशद रूप में व्यक्त करने की बात है उसके बारे में स्वामी जी ने स्वयं निष्कपट भाव से कहा है, "मैं जो बोल रहा हूँ सभी ठाकुर की बातें हैं। परन्तु फिर भी मेरी बातों में ऐसी कोई बात रहे जो संसार के लिए कल्याणकर नहीं है—वह उनकी नहीं, मेरी बात है। और जो कुछ संसार के लिए कल्याणकर है—वे सब उनकी बातें हैं। यह बात स्वामी जी ने मात्र गुरुभक्ति की अधिकता के कारण नहीं कही हैं बल्कि अपने अन्तर्मन से कही हैं। जितने दिन बीतते जा रहे हैं उतना हम समझ पा रहे हैं कि ठाकुर के भाव की, ठाकुर को बातों के तात्पर्य के संबंध में उनकी व्याख्या अपूर्व है ! सभी के लिए उपयोगी बनाकर, युगोपयोगी बनाकर उन्होंने ठाकुर की बातों एवं भावों को हमारे समक्ष प्रस्तुत किया है। उनके व्यवहार में, उनकी वाणी में सर्वत्र हम इसी सामंजस्य को देखपाते हैं कि वे रामकृष्णमय है। 'रामकृष्णमय'—यह मात्र कविता की भाषा नहीं है बल्कि सत्य-सत्य है। ठाकुर ने कहा था, "मैं तुम्हारे भीतर में घुस गया हूँ।" स्वामी जी कहते हैं, "Lo the old man is entering into me !" (देखो, बुड्ढा आदमी मेरे भीतर में प्रवेश कर रहा है।) ठाकुर

ने कहा, "अंग्रेजी में बोल रहे हो—मैं क्या नहीं समझता ? तुम बोल रहे हो, तुम्हारे भीतर मैं घुस रहा हूँ हाँ, मैं घुसूँगा—छटपट करके घुस जाऊँगा। तुम्हारे भीतर प्रवेश करूँगा।" करेंगे ही तो क्योंकि स्वामी जी उनके यन्त्र थे। ठाकुर जिस प्रकार जगन्माता के स्वरूप हैं स्वामी जी भी ठीक वैसे ही हैं। वे रामकृष्ण की नवीन आवृत्ति हैं, नवीन संस्करण हैं, जिसे अपेक्षाकृत सहज में हम कुछ धारण कर सकेंगे। श्रीरामकृष्ण को जानना, उनकी गहनता का चिन्तन करना हम लोगों के लिए संभव नहीं है, किन्तु स्वामीजी हम लोग के लिए बहुत बुद्धिगम्य हैं जिसकी सहायता से हम श्रीरामकृष्ण के स्वरूप की कुछ कुछ धारणा कर सकेंगे फिर भी श्रीरामकृष्ण को जिस प्रकार हम समझ नहीं पाते स्वामीजी को भी उसी प्रकार सम्पूर्णरूप से समझ नहीं पाते।

स्वामीजी को बहुत बार हम राष्ट्र नेता कहकर पुकारते हैं। निश्चय ही वे देशके नेता हैं, भारत के नेता हैं। फिर भी वे मात्र भारत के नेता नहीं हैं—वे विश्व के नेता हैं। अपने जीवन के माध्यम से जगत् की आध्यात्मिक चिन्ता धारा को वे एक नया रूप दे गये। क्रमशः हमारे समक्ष स्पष्ट हो रहा है कि जगत् में एक नवीन भाव का आलोड़न स्वामी जी के माध्यम से शुरू हुआ है। संसार ने स्वामी जी का आविष्कार किया शिकागो धर्ममहासभा में। परन्तु वहाँ पर उनका प्रकाश आंशिक है। उनके सम्पूर्ण जीवन में वही प्रकाश काम करता रहा था और जो आज तक समाप्त नहीं हुआ है। सूक्ष्म देह में वे वही उद्धार का कार्य किये जा रहे हैं। जैसे, श्रीरामकृष्ण उनके लीलापार्षद भी वैसे ही नित्य कार्य किये जा रहे हैं।

स्वामीजी का जीवन उनके अपने लिये नहीं था, यह बात हम सब अच्छी तरह समझ सकते हैं। स्वामी जी ने चाहा था, कि वे समाधि में डूबे रहेंगे और देह रक्षा के लिए कभी-कभी एक दो ग्रास अन्न ग्रहण करेंगे और पुनः समाधि में डूब जायेंगे। श्रीरामकृष्ण ने यह सुनकर उनकी भर्त्सना करते हुए कहा था, "धिक्कार है तुमको ! तुम साधारण साधक के समान स्वयं के समाधि-सुख में व्यस्त रहोगे ? मैं सोच रहा था, कहाँ तुम एक विराट वटवृक्ष के समान बनोगे जिसकी छाया में आकर श्रान्त पथिक विश्राम लाभ करेंगे। और ऐसा न बनकर तुम केवल आत्मसुख में, समाधि-सुख में मग्न होकर रहोगे ? सोचने से आश्चर्य होता है कि यह बात श्रीरामकृष्ण कह रहे हैं जो स्वयं ही मुहुर्मुहुः समाधि में लीन हो रहे हैं ! परन्तु वे ही फिर तत्क्षण कहते हैं, "माँ मुझे बेहोश मत करना। मैं इन लोगों के (भक्तों के) साथ बातचीत करूँगा।" वे स्वयं समाधि में डूबे रहने के लिए नहीं आये हैं, स्वयं के समाधि-सुख की उन्होंने अपेक्षा की है। जिस समाधि के लिए युग-युगान्तर से, जन्म-जन्मान्तर से ऋषि-मुनिगण तपस्या कर रहे हैं—जिस समाधि-सुख को वे 'निर्विकल्प' सुख कहकर जानते हैं; उसकी उपेक्षा वे क्यों कर रहे हैं ? भक्तों के कल्याण के लिए। और उनके प्रधान पार्षद स्वामी जी कह रहे हैं, "मुझे एक व्यक्ति का भी दुःख दूर करने के लिए यदि शतसहस्र बार जन्म लेना पड़े तो उसके लिए भी मैं प्रस्तुत हूँ।" वे स्वयं मुक्ति नहीं चाह रहे हैं। स्वयं मुक्ति चाहना निषिद्ध है। श्रीरामकृष्ण मना कर गये हैं। अतः वह रास्ता बन्द है। ठाकुर ने उनसे कहा है, "जगत्कल्याण के लिए तुमको काम करना होगा। तुम जगतकल्याण के लिए निवेदित हो।" स्वामीजी ने कहा, "मैं नहीं कर सकूँगा।" ठाकुर ने कहा, "तुम नहीं कर सकोगे, तुम्हारी हड्डी करेगी !" माँ का कार्य करना पड़ेगा। फिर कहते हैं, "यह तुम्हारी समाधि के दरवाजे पर ताला लगा दिया। ताला जब खोल

दूँगा तब फिर अपने स्थान वापस चले जाना।" स्वामी जी कभी-कभी आक्षेप करते हुए कहते थे, "ठाकुर की माँ-काली मेरी गर्दन पकड़कर ऐसे घुमा-फिरा रही है कि किसी भी तरह इससे मेरी निवृत्ति नहीं है! सोचा था हिमालय की गुफा में समाधि में मग्न रहूँगा, वहाँ से मुझे खींच लाए हैं।" श्रीरामकृष्ण ने उनको इसी प्रकार तैयार किया है और जगन्माता के कार्य के लिए उनको सम्पूर्ण रूप से उत्सर्ग कर दिया है। अन्यथा दूसरे ढंग से उनकी जीवन-धारा का प्रवाहित होना संभव नहीं था।

एक दिन की घटना है। गिरीश बाबू बलराम मंदिर में गये हैं। देख रहे हैं, स्वामी जी शिष्य के साथ वेदान्त चर्चा कर रहे हैं। स्वामीजी ने गिरीश बाबू से कहा, "जि० सि० ये सब तो तुमने कुछ किया नहीं!" गिरीश बाबू ने कहा, "वह तो हुआ, किन्तु यह जो संसार में इतने दुःख-कष्ट हैं, तुम्हारा वेदान्त इसका क्या उपाय बताता है, बोलो तो! अमुक स्थान पर एक असहाय विधवा ने अपनी एकमात्र सन्तान को खो दिया, उसका दुःख दूर करने का उपाय क्या है?" इस प्रकार एक के बाद एक दुःखपूर्ण बात कहकर वे ऐसे सब चित्र दिखाने लगे कि स्वामीजी की आँखों में आँसू आ गये। और सहन न कर सकने के कारण स्वामी जी वहाँ से उठकर चले गए। तब गिरीश बाबू ने शिष्य से कहा, "देखा बाँगाल! तुम्हारे गुरु को हम लोग जो श्रद्धा करते हैं वह तुम्हारे इस वेदांत के लिए नहीं—उनके हृदय की विशालता के लिए करते हैं। देखा उनका हृदय कितना विशाल है? संसार का दुःख उनको किस प्रकार व्यथित कर रहा है! जगत 'मिथ्या' है कहकर वे वेदान्ती साधुओं की तरह समाहित होकर अथवा उदासीन होकर रह नहीं सकते क्योंकि वे उस तरह के वेदान्ती नहीं थे।

स्वामी जी का वेदान्त जगत् छोड़कर नहीं, जगत को लेकर है। जगत् मिथ्या—यह वे नहीं कहते। ब्रह्म सत्य जगत् मिथ्या—यह सम्पूर्ण सत्य नहीं है। जगत् तो ब्रह्म की ही अभिव्यक्ति है। यह हुई वेदान्त की कार्यकारिता, व्यावहारिक प्रयोग। स्वामीजी अथवा ठाकुर के पूर्व इस प्रकार सुचारु ढंग से हमारे देश में शायद और किसी ने कभी भी यह बात नहीं कही है। यह हुआ स्वामी जी का 'प्रेक्टिकल वेदान्त'। हो सकता है सिद्धांत की दृष्टि से यह बात बहुत बार कही जा चुकी है कि इस जगत् में सभी ब्रह्ममय है। "एतदात्म्यमिदं सर्वम्" उपनिषद की बात है (छान्दोग्य उपनिषद, ६।८।७)। समस्त जगत ही ब्रह्मात्मक है। ब्रह्म ही यह सब हुये हैं। वे ही कार्य हुये हैं, वे ही कारण हुये हैं। वे ही समस्त जगत में परिव्याप्त हैं। शास्त्र में सब सिद्धान्त की बातें हैं किन्तु वे सब सिद्धान्त पोथी के पन्नों में ही रह गये हैं, जिस पोथी के पन्नों को कीड़े काट रहे हैं परन्तु हमारे जीवन में उसका ग्रहण नहीं हो रहा है। स्वामी जी ने इसीलिए हमलोगों को, विशेषकर भारतवासी पर तीव्र कटाक्ष किया है। तथापि यह भारत के ऋषियों का सिद्धान्त है जिसकी संसार में कोई तुलना नहीं है परन्तु इस सिद्धान्त की, इस प्रकार के अपूर्व सिद्धान्त की, इस प्रकार उपेक्षा करने की मिसाल भी यहाँ को छोड़ अन्यत्र कहीं भी नहीं है। एक विराट सत्य को व्यावहारिक रूप से प्रयोग करने से उसकी कितनी दूर तक संभावनाएँ निहित हैं, इस विषय में हम लोगों ने कभी भी ढूँढ़कर देखा नहीं अथवा उसका प्रयोग कर कभी भी अपने देश की उन्नति करने की चेष्टा नहीं की। जगतकल्याण का एकमात्र सूत्र यहीं पर विद्यमान है। सम्पूर्ण जगत् को आत्मवत् देखना—एक आत्मरूप मैं सर्वभूत में, सर्वभूत मुझमें—यह जो सिद्धान्त है, इसे व्यावहारिक रूप से प्रयोग करने की चेष्टा कभी भी नहीं हुई। हम

वह कहानी जानते हैं—एक पंडित कह रहा है कि ब्रह्म ही सब कुछ हुए हैं इत्यादि। पंडित ट्रेन से जा रहा था। इसी समय एक धोबीको अपने कपड़े की गठरी सिर पर उठाये वहीं पर चढ़ते देख तुरन्त ही तुच्छ एवं अवज्ञा करते हुए पंडित ने धोबी से कहा, "ऐ धोबी, जा-जा चला जा यहाँ से। दूर हट। तुम्हारे पास की छाया पड़ जाएगी। जा, जा यहाँ से।" ट्रेन के एक सहयात्री ने कहा, "आप तो अभी कह रहे थे कि सभी ब्रह्म हैं!" पंडित ने तब कहा, "वह तो कहा था पारमार्थिक बात! और यह तो व्यावहारिक क्षेत्र है, यहाँ क्या वह बात चलेगी!"

स्वामी जी कहते हैं, "जिस दिन हमारे देश में इस व्यावहारिक एवं पारमार्थिक बातों के बीच भेद की सृष्टि हुई उसी दिन से देश का सर्वनाश हुआ।" स्वामी जी ने यह बात ठाकुर की बातों का सूत्र पकड़कर ही कहा था—यह हमें याद रखना होगा। जैसे, ठाकुर ने "जीवों पर दया" शब्द पर कटाक्ष करते हुए कहा था, 'तुम दया करने वाले कौन हो? तुम कीटाणुकीट।' दया नहीं शिवज्ञान से जीव सेवा।" सर्वभूत में वे हैं—यही समझकर उनकी सेवा करने के लिए कहा। और भी एक बात उन्होंने कही है, "मिट्टी की मूर्ति में उनकी पूजा होती है और मनुष्य में उनकी पूजा क्यों नहीं होगी? ठाकुर की बातों का ही स्वामी जी ने जगत में प्रचार किया है। वहीं उन्होंने पाया अपने 'प्रेक्टिकल वेदान्त' का सूत्र। स्वामी जी ने बारंबार सभी को सुनाया कि मनुष्य में उनकी पूजा के समान और दूसरी कोई पूजा नहीं है। यही पूजा सर्वश्रेष्ठ है। उन्होंने कहा, "संसार में सर्वत्र उनको देखो। देखकर उनकी पूजा, उनकी सेवा करो।" शास्त्र की ही यह बात है। परन्तु युक्ति की सहायता से इस तरह उसकी प्रतिष्ठा एवं व्यावहारिक प्रयोग इसके पहले और कभी नहीं हुआ। हम भागवत में पढ़ते हैं—,"

"सर्वभूतेषु यः पश्येद् भगवद्भावमात्मनः।
भूतानि भगवत्यात्मन्येष भागवतोत्तमः॥"
(११।२।४५)

—सर्वभूतों में जो भगवान को प्रतिष्ठित देखते हैं, भगवान में सर्वभूतों को प्रतिष्ठित देखते हैं, जो आत्मा में सर्वभूत को प्रतिष्ठित देखते हैं, सर्वभूत में आत्मा को प्रतिष्ठित देखते हैं—वही श्रेष्ठ भक्त हैं।

इस दृष्टि से देखने से क्या स्वामी जी श्रेष्ठ भक्त नहीं हैं? ठाकुर ने कहा है कि ज्ञानी का चेहरा कभी शुष्क नहीं होता। नरेन का चेहरा देखो, भक्त का चेहरा है, प्रेम से भरपूर। ठाकुर ने कहा था, "माँ, मुझे शुष्क साधु नहीं बनाना।" उन्होंने अपने शिष्य को भी शुष्क नहीं बनाया। प्रेमरस से भरपूर किया है, जो प्रेम सर्वत्र प्रवाहित है। जैसे, स्वामी जी ने ठाकुर के सम्बन्ध में लिखा है, "आचण्डालाप्रतिहतरयो यस्य प्रेम प्रवाहः"—चण्डाल से लेकर सभी के लिए उनके प्रेम का प्रवाह अप्रतिहत था। ठाकुर के संबंध में यह बात स्वामी जी जैसे बोलते हैं, हम लोग भी स्वामी जी के सम्बन्ध में वैसी ही बात कह सकते हैं—शायद चाण्डाल आदि के प्रति ही उनका पक्षपात अधिक था क्योंकि उनको कष्ट अधिक है, वेदना अधिक है। वे अवहेलित हैं उपेक्षित हैं। स्वामी जी का हृदय उन लोगों के लिए ही अधिक रोता था। अतः हमारे देश का, हमारी जाति का उद्धार करने के लिए स्वामी जी ने उस समय कहा था कि जो अवहेलित हैं उन लोगों की पहले उन्नति करनी होगी। ऐसा नहीं होने से देश कभी भी उठेगा नहीं। हमारे नेतृत्ववृन्द के पास से इन सब बातों की प्रतिध्वनि हम अब थोड़ा-थोड़ा कर सुन पा रहे हैं। परन्तु ये बातें मात्र बातें ही रह

जाएँगी यदि स्वामी जी के समान हृदय उन लोगों का न हो।

स्वामी जी ने कहा है, समस्त जगत् का प्रयोजन भारत का कल्याण है। क्यों ? क्योंकि यदि भारत जागेगा, यदि भारत पुनः स्वमहिमा में प्रतिष्ठित होता है तो समस्त जगत पुनः अपने-अपने लक्ष्य के सम्बन्ध में अवहित हो सकेगा। स्वामी जी ने बार-बार कहा है, "पूरा संसार भारत की ओर देख रहा है।" भारत का जो अमूल्य तत्व सम्पद विद्यमान है इस तत्व के लिए विश्व आकुलता से अपेक्षा कर रहा है। परन्तु जो इस तत्व के अधिकारी हैं, वे इस विषय में उदासीन हैं, वे भूल गये हैं। उन्हें इस तत्व को फिर से जानना होगा। भूली हुई वस्तु को फिर से अपना बनाना होगा एवं तभी वे जगत में इस तत्व को देने लायक बनेंगे। स्वामी जी बार-बार कहते हैं, "भारत जो अभी तक बचा हुआ है उसका कारण है यही अपूर्व सम्पदा, जो यक्ष के धन के समान रहकर कुंडीबंद है। फिर भी इस दौलत को अपना बनाकर रखना वह भूल गया है।" जैसे उपनिषद् ने कहा है— मिट्टी के नीचे रत्न गड़े हुए हैं, उसके ऊपर से मनुष्य आना जाना कर रहे हैं, इसके सम्बन्ध में उन्हें कुछ ज्ञान नहीं है। हम लोगों की भी ठीक यही दशा है। जो अमूल्य रत्न हमारे ऋषिगण हमारे लिये रख गये हैं—उसी 'रत्न' के सम्बन्ध में हम उदासीन हैं। स्वामी जी कहते हैं, "यह आत्मविद्या तुम लोग अपने जीवन में जाग्रत करो। यह आत्मतत्व तुम लोग अपने भीतर प्रतिष्ठित करो। तब तुम लोगों का कल्याण होगा एवं तुम लोगों के माध्यम से समग्र जगत का कल्याण होगा।" स्वामी जी के आशीर्वाद से हम सब जिससे उनकी इस आत्मविद्या के सम्बन्ध में अवहित हों एवं स्वयं के जीवन को उसी भाव से भावित करके, उनके इस जगत्कल्याण कार्य में अपने साध्यानुसार सहायक बनें। इसलिए उनके कलकत्ता-प्रत्यावर्तन की शतवर्ष जयन्ती में उनसे अपनी आन्तरिक प्रार्थना करते हैं।

(उद्बोधन के फाल्गुन १४०३, फरवरी १९९७ अंक से साभार अनूदित)

□

तुम तो ईश्वर की सन्तान हो, अमर आनन्द के भागी हो, पवित्र और पूर्ण आत्मा हो। अतएव तुम कैसे अपने को जबरदस्ती दुर्बल कहते हो ? उठो, साहसी बनो, वीर्यवान होओ। सब उत्तरदायित्व अपने कंधे पर लो—यह याद रखो कि तुम स्वयं अपने भाग्य के निर्माता हो। तुम जो कुछ बल या सहायता चाहो, सब तुम्हारे ही भीतर विद्यमान हैं।

—स्वामी विवेकानन्द

प्रकाश दिवस : ५ जनवरी।

गुरु गोविन्द सिंह का मानवतावाद

—प्रो० लालमोहर उपाध्याय
पटना

यह एक ऐतिहासिक सत्य है कि पटना साहिब (पटना सिटी) में जिस जगह श्री गुरु गोविन्द सिंह जी महाराज का आज से ३३१ वर्ष पहले प्रकाश जन्म हुआ था, उसके एक तरफ मस्जिद थी तो दूसरी तरफ मंदिर भी था। स्वाभाविक है कि गुरु जी को कानों में संगत द्वारा गुरुवाणी कीर्तन के साथ-साथ मंदिर से आ रही घंटियों की आवाज तथा मस्जिद से आ रही आजान की आवाज भी पड़ी होगी। यह एक दैवी संयोग ही था। इसीलिए तो श्री गुरु गोविन्द सिंह जी महाराज ने जीवन का मूल मंत्र दिया—

"हिन्दू तूरक कोउ राफजी हम
मानस की जात सबै एकै पहचान बो"

इतना ही नहीं करीम एवं रहीम में एक ही ज्योति का दर्शन करने की प्रेरणा देते हुए उन्होंने डंके की चोट पर कहा कि सम्पूर्ण विश्व का गुरु एक ही ब्रह्म है—

"करता करीम साई राजक रहीम उही,
दूसरों न भेद कोई भूल भरम मानबो।
एक ही की सेव, सबही सो गुरुदेव एक,
एक ही स्वरूप सबे, एक ज्योति जानबो"

सच तो यह है कि अल्लाह एवं अकबर तथा कुरान एवं पुराण में तत्वत: कोई भेद नहीं है।

गुरु गोविन्द सिंह जी महाराज ने पथ-भ्रष्ट जनता को सही दिखाने के लिए धर्म, जाति, देश-भाषा के कारण उत्पन्न विभिन्नता समाप्त कर भावात्मक एकता स्थापित करने के उद्देश्य से यह समझाया कि मंदिर मस्जिद, पूजा-नमाज, देव-गन्धर्व, हिन्दू-मुसलमान में मूलत: कोई भेद नहीं है। यह केवल बाहरी दिखावा है। इतना ही नहीं आत्मा भी परमात्मा का ही अंश है।

इसीलिए तो श्री गुरु गोविन्द सिंह जी महाराज ने समय की मांग के अनुसार बैसाखी १६९९ के दिन श्री केशगढ़ आनन्दपुर साहिब, पंजाब में खालसा पंथ का सृजन कर अछूत एवं दलित वर्ग के स्वाभिमान को बढ़ाया और अपने चमत्कारी व्यक्तित्व के प्रभाव से चिर शोषित और चिर उपेक्षित जन साधारण को राष्ट्रीय मुक्ति आंदोलन का दुर्जेय योद्धा बनाकर दिखला दिया कि मनुष्य जाति एक है—इसमें कोई भेद नहीं समझना चाहिये।

उन्होंने खालसा पंथ का सृजन करते समय जाति-पाँति एवं प्रदेश का भेद मिटाकर नये नाम रखे जो इस प्रकार है—भाई दया राम खत्री, लाहौर का नाम हो गया भाई दया सिंह, भाई धर्मचन्द जाट, दिल्ली का नाम हो गया भाई धर्म सिंह, भाई मुहमचन्द धोबी, द्वारका का नाम हो गया भाई मुहकम सिंह, भाई हिम्मत राम कहार,

जगन्नाथपुर का नाम हो गया भाई हिम्मत सिंह, भाई साहबचन्द नाई, बिहार का नाम हो गया भाई साहिब सिंह। गुरु गोविन्द राय जी हो गये गुरु गोविन्द सिंह जी।

इस तरह उन्होंने विश्व के समक्ष लोकतन्त्र और समाजवाद का एक अद्यतन दृश्य उपस्थित किया। इसमें दो मत नहीं कि जाति-पाँति एवं छूआछूत का रोग समाज की शक्ति को धुन के कीड़े की तरह खाता जा रहा था। ऐसी विषम परिस्थिति में श्री गुरु गोविन्द सिंह जी महाराज ने अकेले ही युग की चुनौती को स्वीकार किया और अपने असीम साहस, दृढ़ संकल्प और आश्चर्यजनक प्रतिभा से समाज की प्रबल धारा को मोड़ दिया। उन्होंने संगत सह, चिंतक पंगत सहयोजन-लंगर की अनुपम रीति को आगे बढ़ाकर जन-साधारण को एकता का मंत्र दिया।

यही कारण है कि गुरु गोविन्द सिंह जी महाराज के व्यक्तित्व की तुलना साधु टी० एल० वासवानी ने इस प्रकार की है—उनमें अतीत में अवतरित सभी ईश्वर पुत्रों के गुण विद्यमान थे। गुरु नानक देव जी महाराज की विनम्रता, ईसा मसीह की तरह भरी मासूमियत, महात्मा बुद्ध का आत्मज्ञान, हजरत मुहम्मद का लबलबाता जोश, भगवान श्रीकृष्ण जी का सूर्यव्रत प्रताप, भगवान राम जैसा मर्यादा पुरुषोत्तम तथा शहंशाहों वाली शान श्री गुरु गोविन्द सिंह जी महारज में थी।

अल्ला यार खाँ ने पूरे विश्व के साथ कह दिया है—इसीलिए तो सुप्रसिद्ध आर्यसमाजी लाला दौलत राय ने लिखा है—"महाभारत में भगवान श्रीकृष्ण ने कहा था—सबसे महान त्यागी वह है, जो दूसरों की भलाई के लिए रणभूमि में अपने प्राण त्यागे। गुरु गोविन्द सिंह जी ने दूसरों के लिए न अपने प्राण न्योछावर किये वरन् जो कुछ भी अपना था, वह सारा देश को अर्पण कर दिया। अपनी प्यारे संतानों चारों पुत्र को भी धर्म पर कुर्बान कर दिया। अपना सर्वस्व देश के लिए लूटा दिया। इसीलिए श्री गुरु गोविन्द सिंह जी महाराज से बड़ा त्यागी भारत में कौन है? उर्दू के वरिष्ठ पत्रकार लाला रणवीर जी ने अपनी पुस्तक 'युग पुरुष' में लिखा है—"गुरु गोविन्द सिंह जी महाराज ने भलनी भगवती चण्डिका को उठाया तो किसी धर्म या सम्प्रदाय के विरुद्ध नहीं प्रत्युत हिंसा अत्याचार, अन्याय, पाप और दासता का सर्वनाश करने के लिए।"

इतना ही नहीं भारतीय संस्कृति एवं हिन्दू धर्म की रक्षा में उनका योगदान अपूर्व रहा है। यह एक अभूतपूर्व घटना है कि मात्र नौ वर्ष की उम्र में और वह भी माता-पिता का इकलौता पुत्र होते हुये भी उन्होंने हिन्दू धर्म की रक्षा एवं तिलक-जनेउ को जबरन समाप्त करने के विरोध में उन्होने अपने पिता श्री गुरु तेग बहादुर जी महाराज को ११ नवम्बर, १६७५ ई० को चांदनी चौक दिल्ली में शहीद होने के लिए निवेदन किया जिनकी यादगारी में निर्मित राजधानी में गुरुद्वारा शीशगंज एवं गुरुद्वारा रकाबगंज मानवीय एकता के ज्वलंत उदाहरण हैं। उन्होंने डंके की चोट पर कहा है।

भारतीय संस्कृति एवं धर्म के हिमायती के रूप में श्री गुरु गोविन्द सिंह जी को कभी नहीं भुलाया जा सकता है।

उन्होंने गोमाता एवं ब्राह्मण वंश की रक्षा के लिए जो प्रतिज्ञा की दसम ग्रंथ में इस प्रकार वर्णित है—

"यही आस पूरन करो हमारी
मिटे कष्ट गोअन छूटे खेद भारी
ब्राह्मण गोउ वंश घात अपराध कटारे।"

हिन्दू संस्कृति के पोषक के रूप में हम गुरु गोविन्द सिंह जी महाराज को कभी नहीं भूल सकते। उन्होंने डंके की चोट पर कहा है।

श्री गुरु गोविन्द सिंह जी की सम दृष्टि का ज्वलंत उदाहरण युद्ध के मैदान में भी देखा जा सकता है। युद्ध के मैदान में उनका एक शिष्य कन्हैया सिख एवं मुसलमान दोनों पक्षों के घायल अपाहिजों को पानी पिला रहा था। इस पर कुछ सिख सिपाही गुरु गोविन्द सिंह जी के पास जाकर कन्हैया को शिकायत करते हैं कि वह अपने दुश्मन मुसलमान सिपाहियों को भी पानी पिलाता है। इस पर गुरु जी ने स्पष्टीकरण किया—यह हमारा कर्तव्य है—मानवता के लिए जरूरी है। पानी पिलाने की बात क्या वह उन घायलों की मरहम पट्टी भी किया करे। यही हमारा धर्म है।

वास्तविकता तो यह है कि गुरु गोविन्द सिंह जी का मानवतावाद सार्वकालिक है। उनकी लड़ाई इस्लाम एवं मुसलमानों के खिलाफ नहीं थी, वरन् मुगल साम्राज्य द्वारा किये जा रहे धर्म पर कुठाराघात, ज़ुल्म एवं अत्याचार के खिलाफ थी। उन्होंने स्पष्ट लिखा है—

"दशम कथा भागोत की भाखा करि बनाई।
अवर वासना नहीं प्रभु धर्म जुध के चाई।
धन्य जियो तिह को जग में
मुख ते हरि चित में जुद्ध विचारे।"

मेरे साहित्यिक गुरु आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी जी ने सच ही लिखा है—"धन्य है वह देश, जहाँ गुरु गोविन्द सिंह जी उत्पन्न हुए थे।

उन्होंने इस देश की जनता की अपार शक्ति का उद्घाटन किया। उनका स्मरण करके हम आज भी नयी प्रेरणा और शक्ति पा सकते हैं—पा रहे हैं।"

आज हम संत सिपाही साहित्यकार श्री गुरु गोविन्द सिंह जी का प्रकाशोत्सव जयन्ती पूरे विश्व में सोल्लास मना रहे है—आज जरूरत इस बात की है कि हम सभी संकल्प लें—देश की एकता, अखण्डता, विश्व-बंधुत्व एवं सेवा के लिए जूझने की। हम संकल्प लें उनके संदेश—मानस की जात सबै एकै पहचान बो।" को ईमानदारीपूर्वक जीवन में उतारने का प्रयोगात्मक रूप देने का, तभी हम सच्चा सिख हो सकते हैं।

पवित्र होना और दूसरों का हित करना—सभी उपासनाओं का यही सार है। जो दरिद्रों में, दुर्बलों में और रोगियों में शिव को देखता है वही शिव की सच्ची पूजा करता है और यदि वह केवल प्रतिमा में शिव को देखता है, तब उसकी पूजा मात्र प्रारंभिक है।

—स्वामी विवेकानन्द

हिमालय की गोद में स्वामी विवेकानंद

—रतनचंद धीर

मई, १९०५, कश्मीर के विद्वान ब्राह्मण नंदलाल कोतरु की खुशी का पारावार न था जब उन्हें सूचना मिली कि कन्याकुमारी से स्वामी विवेकानंद जी कश्मीर-श्रीनगर पधारे हैं।

श्री नंदलाल जी उनसे मिलने गये, मन-ही-मन संकोचवश विवेकानन्द जी से कह भी न पाये कि हमारे घर चलिए। नंदलाल जी के मन की बात जान कर स्वयं स्वामी जी बोले, "पंडित जी क्या हमें अपना घर नहीं दिखाओगे ?"

स्वामी जी के इस वाक्य ने जैसे नंदलाल जी को नया जीवन दे दिया हो, नंदलाल जी ने स्वामी जी चरण स्पर्श करते हुए कहा, "महाराज यही बात मैं कहने जा रहा था, किन्तु साहस नहीं जुटा पाया था।"

"हम अभी आपके साथ घर चलते हैं।" कह कर स्वामी जी अपने सहयोगियों के साथ नंदलाल के साथ चल पड़े।

खीर भवानी के मंदिर में

स्वामी के साथ कन्याकुमारी से श्रीधरानन्द परमहंस श्री रवि कुमारानंद तथा श्री प्रेमानन्द जी साथ गये थे। चारों ही श्री कोतरु के मकान में पुराने श्रीनगर में पहुँच गये। दिन भर आराम करने के बाद स्वामी जी ने श्री नंदलाल जी को अपने-पास बिठाते हुए कहा, "अरे पंडित जी आज मंगलवार है, हमें उस माँ के पास ले चलो, जो खीर का प्रसाद यहाँ पर आये भक्तजनों को देती है।"

"हाँ महाराज ! माँ का नाम ही खीर भवानी प्रसिद्ध हो गया है। किस समय चलना चाहेंगे, महाराज ?"

"पंडित जी, माँ तो मुझे अभी बुला रही है, फिर माँ के पास जाने का कोई समय थोड़े ही होता है, जब चाहो माँ के पास चले जाओ। फिर माँ तो मुझे बहुत प्यार करती है।"

पंडित जी ने खीर भवानी के मंदिर में चलने का प्रबन्ध किया।

कुछ समय बाद अपने श्रद्धालुओं के साथ स्वामी जी जैसे ही खीर भवानी के द्वार पर पहुँचे, तो इतने प्रसन्न थे, मानो वास्तव में उन्हें माँ मिली हों। खीर भवानी की प्रतिमा के चरण स्पर्श करके उनके सामने ही आसन पर बैठ गये और एकटक माँ की ओर देखने लगे। दो घंटे के पश्चात स्वामी जी की समाधि लग गयी और फिर पचास घंटे के पश्चात स्वामी जी ने जब आँखें खोली तो देखा कि चारों ओर जय माँ भवानी की धुन लगी थी, क्योंकि पचास घंटे लगातार अखंड कीर्तन होता रहा।

भक्तजनों के आग्रह पर स्वामी जी ने मंदिर में ठहर कर चार प्रवचन किये। उनके पहले प्रवचन

का मूल बिंदु था, सबमें मेरी माँ और मेरे परम-पिता परमात्मा हैं। प्रवचन का सारांश था—प्रिय भक्तजनों, मैं कन्याकुमारी से चल कर भारत मस्तक तक आया हूँ--मुझे कोई कण भी ऐसा न दिखाई पड़ा, जहाँ मेरी माँ का वास न हो। नदियाँ माँ के गीत गा रहीं हैं, हवाएँ मल्हार गा रहीं हैं, वृक्ष फूल, लता और पत्ते, पशु-पक्षी एवं प्राणी अलग नाम और ध्यान से मेरी माँ में लीन होना चाह रहे हैं। आप में से यदि किसी एक को भी संदेह है, तो आओ मेरी आँखों से देखो, मेरे कानों से सुनो। मेरे दिल की धड़कनों पर हाथ रख कर देखो, मेरी माँ कैसे मुझे बुला रही है।

स्वामी जी के दूसरे प्रवचन का केन्द्रीय भाव था, कोई पराया नहीं, इस प्रवचन में उन्होंने बताया कि मेरा प्रभु कितने विशाल हृदय का है, उसने हमारे लिए अग्नि, जलवायु आकाश, पृथ्वी दी और फल-फूल हमारे लिये बनाये। मेरे पिता के लिए कोई भी पराया नहीं है, छोटा-बड़ा, ऊँच-नीच, सब हमारी बुद्धि में है, उस पिता के हम सब बेटे हैं फिर वे भला क्यों ऐसा अन्याय करने लगे--जिससे हम एक दूसरे के छोटे-बड़े हों, ऊँच-नीच हों। मंदिर-मस्जिद-गुरुद्वारे और गिरजाघरों से जो भी पुकारें निकलती हैं, वे सब मेरे और आपके पिता को ही तो बुलाती हैं। किसी से भय न खाओ, यदि आपको भय खाना है, तो पाप से डरो, जिसका मूल झूठ है। क्योंकि झूठ ही एक ऐसा शत्रु है, जो हमें एक दूसरे से अलग कर देता है। मेरी आपसे प्रार्थना है कि परस्पर प्यार से रहो।

स्वामी जी का तीसरा प्रवचन राष्ट्रीय एकता के बारे में था। इसमें उन्होंने कहा था कि आप विचारते होंगे कि मैं बहुत भाषण नहीं करता हूँ। थोड़ी-सी बातें कर के ही चुप हो जाता हूँ—उसका अर्थ यह कभी नहीं कि मुझे भाषण करना नहीं आता। मैं एक विषय पर महीनों बोल सकता हूँ—अपने स्वतंत्र विचार प्रकट कर सकता हूँ। लेकिन आज समय अधिक कहने का नहीं है, क्योंकि हमारा प्यारा देश, पराधीनता की बेड़ियों से जकड़ा हुआ है। इस भूमि को भगवान ने पवित्र मान कर कितनी बार अवतार लिया। माँ भवानी ने राक्षसों का वध करने के लिए महाकाली दुर्गा चंडिका का रूप धारण किया आज वही देश कराह रहा है। हमें चाहिए कि परस्पर वैर-विरोध समाप्त कर के देश के लिए कुछ करें। मैं तो कितनी बार कह चुका हूँ कि आओ, इस देश के स्वाभिमान को जो रूठ कर चला गया, लौटा लायें, हिमालय से कन्याकुमारी तक जन-गण एक हो कर उठे और भारत माँ की बेड़ियाँ कट जायें।

स्वामी जी का चौथा प्रवचन

अपने अन्तिम प्रवचन में उन्होंने स्वर्ग की धारणा को स्पष्ट करते हुए कहा था कि कुछ लोगों की धारणा है कि अच्छा काम करो स्वर्ग मिल जायेगा। मेरा सबसे अनुग्रह है कि भाई, अच्छा काम करो। भले ही किसी चाह के लिए करो। किन्तु याद रखो, स्वर्ग यहीं है, इसी भारत को स्वर्ग कहते हैं। कल्पना में मत विचरण करो। तुम साक्षात स्वर्ग में हो। जिस स्वर्ग की तुम कल्पना करते हो क्या उस धारा के पाँव सागर से आये हैं? क्या उसका माथा बरफ से ढका है? अरे भाई, यही वह स्वर्ग है, तुम इसी स्वर्ग के वासी देवता हो। देवताओं को समझाया नहीं जाता, अपितु देवताओं का आह्वान किया जाता है। इसलिए मैं आप सबका आह्वान करता हूँ कि आओ, भारतीय संस्कृति की नाव, जो भंवर में डगमगा रही है, उसे किनारे तक ले जायें।

स्वामी विवेकानन्द आठ दिन खीर भवानी के मंदिर में ही ठहरे थे। उस मंदिर में आज भी उनका नाम और वहाँ आने का महीना संगमरमर पर अंकित है।

[धर्मयुग, २१ फरवरी, १९८२ से साभार]

युवा मंच

डॉ० टर्नबुल-स्वामीजी के एक पाश्चात्य प्रशंसक

—श्रायब गौरव, श्रंकित कुमार
रामकृष्ण मिशन विद्यापीठ, देवघर

जब स्वामी जी अपनी शिकागो वक्तृता और अन्य भाषणों से अमेरिका में क्रान्ति की लहर पैदा कर रहे थे, तब कई पाश्चात्य शिष्यों ने उनके चरणों में शरण-ग्रहण किया था। उन्हीं पाश्चात्य प्रशंसकों में से एक थे डॉ० कोलस्टोन टर्नबुल।

गोरा एवं लम्बा चेहरा, भूरा एवं छोटे कटे हुए बाल, ललाट पर कान्ति लिये हुए तेजस्वी मुख, भूरी पुतालियों के मध्य में समुद्र के रंग-सी नीली आँखें। हाथ, पैर, शरीर—सब में लम्बाई की ऐसी विशेषता थी, जो दृष्टि को अनायास आकर्षित कर लेती थी। उनके स्वरूप को देखकर उनके आचरण एवं व्यक्तित्व का बोध हो जाता था।

स्वामी अखंडानन्द (गंगाधर महाराज) की आत्मकथा, 'स्मृतिकथा' में डॉ० टर्नबुल का उल्लेख मिलता है। उस पुस्तक में यह लिखा है कि १८९६ के अंत में डॉ० टर्नबुल कलकत्ता के आलम बाजार मठ में स्वामी अखंडानन्द के पास पहुँचे थे। गंगाधर महाराज ने दक्षिणेश्वर के नजदीक ही अरियादहा के राय प्रसन्न बन्दोपाध्याय बहादुर के बगान बाड़ी में उनके रहने की व्यवस्था कर दी थी। उल्लेखनीय है कि गंगाधर महाराज के अनुसार डॉ० टर्नबुल स्वामीजी के सबसे प्रिय अमेरिकन शिष्य थे।

डॉ० टर्नबुल ज्योतिष विज्ञान के ज्ञाता थे और ठाकुर के जन्मपत्री को देख, उन्हें यह विश्वास हो गया था कि ठाकुर एक महान जीव उद्धारकर्ता थे। उनके अनुसार ठाकुर अज्ञान रूपी अंधकार को दूर कर जगत् को ज्ञान लोक में उद्भासित करने आये—"Saviour and light bearer."

भारत में निवास काल के दौरान स्वामी अखंडानन्द और टर्नबुल के बीच घनिष्ठता बढ़ गई थी। खुद स्वामी अखंडानन्द के अनुसार—"अरियादहा में अपने मित्र बहादुर के घर में उनके रहने की व्यवस्था मैंने खुद की। जब भी मैं बगान बाड़ी जाता टर्नबुल साहब मुझे लांगफेलो की कविताएँ पढ़कर सुनाते और मैं उन्हें रामकृष्ण भाण्डारकर का संस्कृत व्याकरण सिखाता। हम दोनों ही एक दूसरे के गुरु एवं शिष्य थे।

महाराज खुद अपने टर्नबुल के बारे में कई बातें बताते थे। उन्होंने कहा था—"वह हमें स्वामीजी के सम्बन्ध में कई विस्मयकारी कहानियाँ सुनाता। स्वामीजी के बारे में ऐसा सुन हम बहुत खुश होते। कभी-कभी वह अमेरिका के बारे में अनेक मजेदार कहानियाँ सुनाता जिन्हें सुन हम विशेष आनन्द से भर उठते।"

इन बातों से यह भी पता चलता है कि टर्नबुल प्रत्येक दिन दस बजे के बाद मठ में आ

आहार ग्रहण करते थे। सारा दिन रहने के पश्चात् संध्यारती के बाद ही वापस लौटते थे। मठ के साथ उनका बहुत ही गहरा रिश्ता था। वह अक्सर दक्षिणेश्वर भी जाया करते थे। स्वामीजी के साथ उनके अतुलनीय प्रेम का अंदाजा इसी बात से लगाया जा सकता है कि जब ठाकुर के एक भक्त हरमोहन मित्र ने अमेरिका में स्वामीजी की भाषणमाला प्रकाशित की तब टर्नबुल विज्ञापन देखते ही पैदल नयनचंद गली जैसी गंदी गली से गुजरते हुए निजी रूप से हरमोहन से मिले और भाषणमाला खरीद कर ही संतुष्ट हुए। उसके बाद वह पैदल ही लौट भी आये। उसी दिन संन्यासियों के अनुरोध पर उन्होंने शिकागो धर्म - महासम्मेलन की विवरण तथा अनेक अन्य संबंधित कथाएँ सुनायी। उनके बोलने की कला को देख स्वयं गंगाधर महाराज मंत्रमुग्ध हो गये।

टर्नबुल की कहानियाँ सुनते-सुनते, बात करने तथा वाद-विवाद करने में बहुत आनन्द आता था। वह अक्सर गुरुभाइयों को स्वामीजी के असाधारण और अभूतपूर्व व्यक्तित्व और जनमानस के ऊपर उनके प्रभाव के सम्बन्ध में कहानियाँ सुनाते। टर्नबुल ने एक बार गंगाधर महाराज को बताया था—"प्रति दिन वक्तृता के अन्त में स्वामीजी से हाथ मिलाने के उद्देश्य से हजारों नर - नारी अपने हाथों को उठाए रखते थे। स्वामीजी के स्पर्श एवं दर्शन पाने के लिए जो धक्का-मुक्की होती थी उससे अनेक महिलाओं के वस्त्र फट जाते थे। विभिन्न सम्प्रदाय के मिशनरियों के लोग जब स्वामीजी के पास वाद-विवाद के लिए पहुँचते तब स्वामीजी निर्विकार प्रसन्नचित से उनके सभी संदेहों को दूर करते हुए अपने युक्तियुक्त उत्तर से उन्हें निरस्त कर देते थे। तब उपस्थित सज्जन अत्यन्त विस्मृत हो जाते थे।" उन के इस विवरण को सुन गंगाधर महाराज ने कहा था —"महान भक्त जैसे ईश्वर पर विश्वास करते हैं ठीक उसी प्रकार तुम भी स्वामीजी पर अत्यधिक विश्वास करते हो। भगवान सदा तुम पर दया दृष्टि रखेंगे।

स्वामी अखंडानन्द सदैव एक घटना के उल्लेख किया करते थे। उन्हीं के शब्दों में "एक बंगाली धर्मप्रचारक शिकागो धर्म महासम्मेलन की समाप्ति के बाद ईर्ष्यावश बम्बई में स्वामीजी के बारे में उल्टा सीधा बोलने लगा। कलकत्ता आने के बाद वह और जोर-शोर से सर्वत्र स्वामीजी को हीन दिखाने की चेष्टा करने लगा। ठीक उसी समय टर्नबुल हमारे मठ में पधारे थे। जब उन्होंने बंगाली खाना खाने की इच्छा प्रकट की तब हम उन्हें लेकर एक भक्त के घर पहुँचे। वहाँ कई गणमान्य व्यक्ति मौजूद थे, जैसे सुरेश बाबू, भोलानाथ पाल (प्रधानाचार्य, हेयर स्कूल), प्रकाश चन्द्र मिश्र आदि। मौजूदा व्यक्तियों ने जब स्वामीजी की ख्याति के बारे में सुना, तो उन्होंने टर्नबुल से कुछ भाषण देने के लिए अनुरोध किया। इसके बाद टर्नबुल ने कलकत्ता के विभिन्न स्थानों और अरियादहा में भी स्वामीजी की आलौकिक प्रतिभा और उनके असाधारण प्रभाव पर कई भाषण दिये और इस तरह उस ईर्ष्यालु धर्मप्रचारक को उपयुक्त उत्तर मिल गया।"

स्वामीजी के भारत आ जाने के कई महीनों बाद (टर्नबुल उस समय तक अमेरिका लौट गये थे) टर्नबुल ने शिकागो में Threshold Lamp (चौखट का दीपक) का सम्पादन एवं प्रकाशन आरम्भ किया। उस पत्रिका में स्वामीजी के उपदेशों के आधार पर सुखी और सफल जीवन जीने के लिए कहा गया था। इस पत्रिका की कुछ प्रतियाँ टर्नबुल ने अपने सबसे घनिष्ठ मित्र स्वामी अखंडानन्द को सारगाछी महुला में भी भेजी थीं।

इस प्रकार यह देखने में आता है कि स्वामी अखंडानन्द और टर्नबुल में काफी गहरा संबंध था।

स्वामीजी विदेश भ्रमण से लौटने के पश्चात् विभिन्न जगहों पर भाषण दिया करते थे। अनेक भाषणों में डॉ० टर्नबुल भी उपस्थित रहते थे। स्वामीजी के एक भक्त शंकरी प्रसाद बसु ने अपनी पुस्तक में एक जगह इसका उल्लेख भी किया है। उसमें लिखा है"—७ मार्च, १८९७ के "Nuiron" दर्पण अखबार के अनुसार—७ मार्च को स्टार थियेटर में वेदान्त के सम्बन्ध में स्वामी जी ने भाषण दिया था, तब वहाँ मौजूद बंगला देश और भारत के बहुविशिष्ट गणमान्य व्यक्तियों में डॉ० टर्नबुल भी उपस्थित थे।"

टर्नबुल स्वामीजी के प्रिय शिष्यों में एक थे। एक बार स्वामीजी ने मेरी हेल को २८ अप्रील को लिखा था—"क्या तुम डॉ० कोलस्टोन टर्नबुल को जानती हो? मेरे भारत लौटने के कुछ दिन पहले वह यहाँ आया हुआ था। ऐसा लगता है कि मेरे लिए उसके मन में अपार श्रद्धा है।"

इस कारण भारतीय लोगों ने भी टर्नबुल को काफी पसन्द किया था। जब स्वामीजी कलकत्ता में रह रहे थे तब अक्सर टर्नबुल उनसे मिलने आते थे।

८ मार्च, १८९७ को स्वामीजी दार्जिलिंग गये थे। उनसे लाभान्वित होने के लिए टर्नबुल उनके साथ गये थे।

इस शोध से यह तथ्य सामने आता है कि डॉ० टर्नबुल न सिर्फ स्वामीजी के ऊपर अपार श्रद्धा रखते थे वरन् भारत से भी उनको बहुत लगाव था। उनका जीवन बहुत ही सात्विक था। डॉ० टर्नबुल के जन्म-मरण की तिथि बहुत खोज-बीन के पश्चात भी नहीं मिल सकी है। इतने महान आत्मा के बारे में इतनी थोड़ी जानकारी का मिलना अपने में एक अजूबा है।

स्वामीजी के आकर्षक व्यक्तित्व भारत में ही नहीं वरन् विदेशों में भी तलहका मचाया था। इसी दौरान डॉ० टर्नबुल स्वामी जी से मिले थे तथा इतने प्रभावित हुए कि यह रिश्ता जो कायम हुआ, वह उनके जीवनपर्यन्त चला। डॉ० टर्नबुल के हृदय में अपने गुरु के प्रति अपार श्रद्धा थी जो कि बहुत कम लोगों में पायी जाती है। डॉ० टर्नबुल सचमुच एक महान व्यक्तित्व थे।

जिस प्रकार एक ही सब्जी को उबालकर, तलकर, सूखी या रसेदार सब्जी बनाकर खाया जा सकता है और प्रत्येक व्यक्ति की अपनी अलग-अलग पसंद होती है, उस प्रकार विश्वनियन्ता ईश्वर एक होते हुए भी अपने उपासकों की विभिन्न रुचि के अनुसार भिन्न-भिन्न रूपों में प्रकट होते हैं। प्रत्येक साधक की भगवान् के विषय में अपनी धारणा होती है जिसे वह सबसे अधिक मूल्य देता है। किसी की दृष्टि में वे दयालु स्वामी हैं अथवा वात्सल्यपूर्ण पिता या माँ हैं, किसी के दृष्टि में सहृद सखा हैं तो किसी के लिए वे धर्मपरायण पति अथवा कर्तव्यनिष्ठ एवं आज्ञाकारी पुत्र हैं।

श्री रामकृष्णदेव

"युवाओं के आदर्श : विवेकानन्द"

● मोहन सिंह मनराल
सुरईखेत, अलमोड़ा (उ० प्र०)

युवाओं के लिए पहली आवश्यकता है शिक्षा। ऐसी शिक्षा जो उन्हें जीवन संघर्ष का सफलतापूर्वक सामना करने में सक्षम करे। स्वामी विवेकानन्द के अनुसार "शिक्षा का एकमेव उद्देश्य मनुष्य निर्माण होना चाहिए। हमें ऐसी शिक्षा की आवश्यकता है जिससे चरित्र का निर्माण हो, मानसिक शक्ति बढ़े, बुद्धि का विकास हो, और देश के युवक अपने पैरों पर खड़ा होना सीखें।"

वर्तमान में साधारण लोगों के लिये जो शिक्षा उपलब्ध है वह इनमें से एक भी लक्ष्य की पूर्ति करने में अक्षम होती जा रही है। उससे निकला युवक न तो मनुष्य निर्माण की कसौटी पर उतरता है न ही वह रोजगार ही पाने में सफल हो रहा है। परिणामतः युवा पीढ़ी के लिए उनके भीतर निहित देवत्व के जागरण का प्रश्न ही आज की सबसे बड़ी समस्या है। कारण स्पष्ट हैं और परिणाम भी सामने हैं कि आज का युवा वर्ग दिशाविहीन व लक्ष्य विहीन होकर पुनः पाश्चात्य भोगवादी संस्कृति का अंधानुकरण करने लगा है जबकि उसके लिए लक्ष्य का निर्धारण सबसे अहम प्रश्न रहा है, क्यों ? इसका उत्तर स्वामी विवेकानन्द ने इस प्रकार दिया है।

स्वामी जी कहते हैं "मरना तो होगा ही, तो फिर, एक महान आदर्श लेकर क्यों न मरो? जीवन में एक महान आदर्श लेकर मर जाना कहीं बेहतर है! क्योंकि अपने सामने एक आदर्श लेकर बढ़ने वाला व्यक्ति यदि हजार गलतियाँ करता हो तो मैं दृढ़तापूर्वक कहता हूँ कि बिना आदर्श का मनुष्य पचास हजार करेगा। अतएव आदर्श रखना श्रेष्ठतर है।" इस प्रकार आदर्श न केवल महानता के लिये अपितु कर्म कुशलता के लिये भी आवश्यक है। मगर आदर्श कैसा हो और कौन हो? यही प्रश्न सदा से चले आये हैं। कैसा हो का उत्तर विवेकानन्द देते हैं, "यदि आपका आदर्श जड़ है तो आप भी जड़ हो जायेंगे। स्मरण रहे, हमारा आदर्श है परमात्मा।" कौन हो ? इस प्रश्न के उत्तर में हम निर्विवाद रूप से कह सकते हैं— 'विवेकानन्द'।

विवेकानन्द से बेहतर आदर्श इस युग में युवाओं के लिए दूसरा हो ही नहीं सकता। क्योंकि उनमें हमें अपनी प्राचीनता के साथ साथ आधुनिक समस्याओं व भावी आकांक्षाओं की पूरी पूरी सम्भावनायें दिखाई पड़ती हैं जिनके बिना युवा कभी भी किसी को अपना आदर्श नहीं स्वीकार सकते। स्वामी जी की इन्हीं विशिष्टताओं पर आश्चर्यचकित होते हुए पं० जवाहरलाल नेहरू ने कहा था, "यदि आप विवेकानन्द की रचनाओं को पढ़ें तो आप एक विचित्र बात पायेंगे कि वे पुराने नहीं लगते। उन्होंने जिन विषयों पर लिखा या कहा वे हमारी समस्याओं अथवा विश्व की समस्याओं के मूलभूत पहलुओं से सम्बन्धित है। वह आने वाले लम्बे समय तक हमें प्रभावित करता रहेगा।" इसी बात की साहसिक भविष्यवाणी करते हुए स्वामी जी ने स्वयं भी कहा था, "आगामी पन्द्रह सौ वर्षों के लिए मैंने यथेष्ट कार्य कर दिया है। आने वाली कई शताब्दियों तक किसी को कुछ नया सोचने की आवश्यकता नहीं, केवल इसी पर उंगलियाँ चलाने से काम हो जायेगा।" पर युवा पीढ़ी के लिए यह आवश्यक है कि वे स्वामी जी के दिये आदर्श को समझें और उनके प्रति भक्ति व श्रद्धा रखते हुए उसपर चलने की प्राणपण चेष्टा करें क्योंकि स्वामी जी उन्हें ही अपने कार्य की थाती व वसीयत सौंप गये हैं। उन्होंने तो यहाँ तक कह दिया कि उनके जन्म लेने का प्रयोजन ही था कि युवाओं को संगठित कर उन्हें एक महान लक्ष्य के प्रति लगा देना। आइये

उन्हीं के शब्दों में सुनें, "मेरा विश्वास युवा में है। उनमें से मेरे कार्यकर्ता निकलेंगे वे सिंह के समान सारी समस्याओं का सामना करेंगे। मैं इन युवाओं को संगठित करने के लिये जन्मा हूँ। मैं इन्हें भारत के वक्ष पर दुर्निवार तरंगों के रूप में भेजना चाहता हूँ जिससे ये सबसे पददलित और निम्न से निम्न लोगों के दर-दर नीति, धर्म, शिक्षा और समृद्धि का प्रकाश ले जायेंगे और यह मैं करूँगा या मरूँगा।"

अब प्रश्न है वह कौन सा आदर्श है जो स्वामी जी युवाओं के लिये आवश्यक समझते हैं और जिसके लिये वे किन किन साधनों की अनिवार्यता बताते हैं। इसकी खोज हम स्वामी जी के जीवन व उनकी विचाराभिव्यक्ति में करेंगे क्योंकि उनका जीवन ही उनके विचारों या शब्दों में अभिव्यक्त हुआ है। स्वामी जी जब अपनी दूसरी पाश्चात्य देशों की यात्रा पर कलकत्ता से रवाना होने वाले थे तो उन्होंने जहाज में अपनी शिष्या निवेदिता से कहा, "देखो, जितने भी दिन बीत रहे हैं, उतना ही मैं स्पष्ट समझ रहा हूँ मनुष्यत्व प्राप्ति ही जीवन की सर्वश्रेष्ठ साधना है। इस नवीन वार्ता का ही मैं जगत में प्रचार कर रहा हूँ।"

मनुष्यत्व प्राप्ति सर्वश्रेष्ठ आदर्श

सर्वप्रथम हमें मनुष्य होना है बाद में शिक्षक, नेता, समाजसुधारक, न्यायाधीश, डाक्टर, इन्जीनियर, प्रशासक, साधु, कृषक, या गृहणी। यदि हम सर्वप्रथम मनुष्य हो सके या बना सकें तो हमारा बाकी सब कुछ होना सार्थक होगा अन्यथा निरर्थक। स्वामी जी जब विदेश से वापस लौटे तो उनके एक शिष्य ने उन्हें राजनीति में आकर देश को आजाद करने की बात कही थी। इस पर स्वामी जी ने कहा था कि वे आजादी कल ला सकते हैं मगर उसे संभालेगा कौन ? इस देश में मनुष्य कहाँ हैं। पहले मनुष्य तैयार करना है, बाद में सब कुछ स्वयं ही हो सकेगा।

इसी बात को मद्रास के अपने महत्त्वपूर्ण व्याख्यान में उन्होंने इस प्रकार व्यक्त किया था— "मनुष्य, केवल मनुष्य भर चाहिए। बाकी सबकुछ अपने आप हो जायेगा। आवश्यकता है वीर्यवान, तेजस्वी, श्रद्धासम्पन्न और दृढ़विश्वासी निष्कपट नवयुवकों की। ऐसे सौ मिल जायें तो संसार का कायाकल्प हो जाय। हमें ऐसे धर्म व सिद्धान्तों की आवश्यकता है जो हमें मनुष्य बना सके। ध्यान रहे मनुष्य चाहिए पशु नहीं।"

इसी मनुष्य निर्माण के लिये उन्होंने संन्यासियों के संगठन की स्थापना की क्योंकि उनका विश्वास था कि भारत का पुनरुत्थान धन की शक्ति से नहीं वरन आत्मा की शक्ति से होगा। इस संघ की स्थापना करते हुए आज से एक सौ वर्ष पूर्व स्वामी जी ने इसके उद्देश्य के प्रति कहा था—

"असम्भव आदर्श रखने से काम नहीं चलेगा। अति उच्च आदर्श राष्ट्र को दुर्बल तथा हीन कर डालता है। ··· तुम्हें स्मरण रखना होगा कि— कि इस मठ का उद्देश्य 'मनुष्य' निर्माण करना है। तुम लोगों को इस नवीन प्रणाली मनुष्य निर्माण रूपी नवीन प्रणाली का आश्रय लेना होगा। मनुष्य उसी को कहते हैं जो शक्ति के समान ही शक्तिमान हो और साथ ही जिसके हृदय में नारी सुलभ कोमलता हो—उनकी दुर्बलता नहीं।"

स्वामी जी के इसी कथन से हमें उस मनुष्य निर्माण रूपी आदर्श के दो प्रमुख आधारों का पता लगता है। प्रथम है बल व आत्मविश्वास तथा दूसरा हृदय का विकास या अनुभूति क्षमता का विकास। जब तक इन दोनों क्षमताओं का विकास नहीं होगा मनुष्य का निर्माण सम्भव नहीं।

बल व आत्मविश्वास

स्वामी जी बल या आत्मविश्वास को मनुष्य निर्माण का केन्द्र मानते हुए इसे भव रोगों की एकमात्र दवा तथा धर्म का सार कहते थे। वे नव युवकों को बलवान होने का आह्वान करते हु

कहते हैं—"हे मेरे युवा बन्धु तुम बलवान बनो, यही तुम्हारे लिये मेरा उपदेश है। गीता पाठ की अपेक्षा तुम्हें फुटबाल खेलने से स्वर्ग सुख अधिक सुलभ होगा। बलवान शरीर से अथवा मजबूत पुट्ठों से तुम गीता को अधिक समझ सकोगे। अत: अपने स्नायु बलवान बनाओ। आज हमें जिसकी आवश्यकता है वह है लोहे के पुट्ठे और फौलाद के स्नायु।"

मगर स्मरण रहे कि यह बल पवित्रता का बल है न कि पाशविकता का। स्वामी जी पवित्रता के बल को ही आत्मविश्वास की संज्ञा देते हैं। इसी शक्ति से शक्तिमान होकर वे पश्चिमी जगत में दिगविजयी हुये थे। तभी वे कहते हैं—"विश्वास, विश्वास अपने आप पर विश्वास, परमात्मा के उपर विश्वास यही उन्नति करने का एकमात्र उपाय है।···यदि तुम्हें स्वयं पर विश्वास नहीं तो तुम्हारी मुक्ति संभव नहीं। प्राचीन धर्मों में कहा गया है जो ईश्वर में विश्वास नहीं करता वह नास्तिक है। नूतन धर्म कहता हैं जिसे अपने ऊपर विश्वास नहीं वही नास्तिक है।"

इसके विपरीत दुर्बलता को वे सभी पापों की प्रेरक शक्ति मानते हुए उसके त्याग का आवाहन करते हैं। उनके अनुसार दुर्बलता ही पाप है और दुर्बलता के कारण ही मनुष्य स्वार्थी, हिंसक व अत्याचारी बनता है तथा इसी कारण वह अपना सच्चा स्वरूप प्रकाशित नहीं कर सकता। पाशविक बल इसी दुर्बलता का सूचक है जो अपने विनाश का बीज अपने साथ ही लेकर चलता है। वे कहते हैं—"तुम देखोगे कि वे केन्द्र जहाँ से इस प्रकार के पाशविक बल द्वारा शासन की चेष्टा उत्पन्न होती है सबसे पहले स्वयं ही डगमगाते हैं, उनका पतन होता है और अन्त में वे नष्ट-भ्रष्ट हो जाते हैं।"

अनुभूतिक्षमता या हृदय का विकास

हृदय का विकास मनुष्य निर्माण की अनिवार्य शर्त है आज के वैज्ञानिक युग के लिये यही सबसे प्राथमिक आवश्यकता है क्योंकि विज्ञान तब तक मनुष्य की किसी समस्या का समाधान नहीं कर सकता जबतक मनुष्य का हृदय विकसित न हो। यह विकास धर्म का क्षेत्र है। इस प्रकार विज्ञान व धर्म परस्पर पूरक हैं। एक के बिना दूसरा अपंग है। स्वामी विवेकानन्द का आगमन मानव की इसी आधुनिक समस्या का समाधान करता है।

हम उनके जीवन में ही इस आदर्श के विकास पर दृष्टिपात करें तो पायेंगे कि वे जन्म से ही अद्भुत बौद्धिक सम्पदा से युक्त थे मगर अपने गुरुदेव श्री रामकृष्ण परमहंस की महासमाधि के उपरान्त अपने भारत दर्शन में उनके भीतर तीव्र अनुभूति का विकास हुआ था जो उन्हें भारत की उस पीड़ा पर मरहम लगाने हेतु पश्चिमी देशों में ले गया। वे इस भारत भ्रमण के दौरान अपने गुरुभाई तुरीयानन्द जी से एक भेंट में कहते हैं, "मैं सारे भारत में घूमा हूँ। पर भाई अपने आँखों से लोगों की विकट दरिद्रता और दुःख को देखकर मेरा हृदय दग्ध हो गया है और मैं अपने आँसू न रोक सका। मेरा हृदय अत्यधिक फैल गया है और मैंने तीव्र अनुभव करना सीखा।"

अपनी इसी दशा को वे देशभक्ति का प्रथम सोपान कहते हैं और नवयुवकों में बुद्धि के साथ-साथ हृदय के विकास को मनुष्य निर्माण की अनिवार्य शर्त बताते हैं। भारत लौटकर वे ललकार कर कह उठे थे—"ऐ मेरे भावी सुधारको, मेरे भावी देशभक्तों तुम अनुभव करो। सबके लिये तुम्हारे दिल में दर्द हो—गरीब, मूर्ख, पददलित मनुष्यों के दुःख का तुम अनुभव करो। सम्वेदना से तुम्हारे हृदय का रक्त रुक जाय मस्तिष्क चकराने लगे। तुम्हें ऐसा प्रतीत हो कि हम पागल तो नहीं हो रहे हैं। यदि हाँ तो जानो कि तुमने देशभक्त होने की पहली सीढ़ी पर पैर रखा है।"

यही अनुभूति स्वामी जी के भीतर देशभक्ति के रूप में जाग्रत हुई थी और इसी कारण वे पश्चिम के देशों में भारत की आवाज बनकर बम की तरह फट पड़े थे। उनके उस विस्फोट ने जिस आदर्श को चरितार्थ किया था वह था भारत का सनातन आदर्श सार्वभौम स्वीकृति का आदर्श जो मनुष्य निर्माण के लिये समान रूप से आवश्यक है। जब तक हम इस उदार मत का पोषण करते हुए जीवन में प्रवेश नहीं करेंगे हम अधिक अच्छा नहीं कर सकेंगें क्योंकि सम्प्रदायिकता व हठ धार्मिता मनुष्य के सारे अच्छे गुणों को खा जाती है। इसी उदार मत का प्रचार कर स्वामी जी ने पूर्व व पश्चिम को जोड़कर एक वृत्त का निर्माण किया था। एक सेतु का निर्माण किया था।

उदार भाव या सार्वभौम स्वीकृत

धर्म महासभा के मंच से अपने पहले व्याख्यान में ही स्वामी जी ने कहा था—"मैं एक ऐसे धर्म का अनुयायी होने में गर्व का अनुभव करता हूँ जिसने संसार को सहिष्णुता तथा सार्वभौम स्वीकृति दोनों की ही शिक्षा दी है।" इसी उदार-वाद को धर्म के क्षेत्र में लाते हुए वे अधिवेशन के अन्तिम दिन बोले थे—"ईसाई को हिन्दू या बौद्ध नहीं हो जाना है न हिन्दू अथवा बौद्ध को ईसाई। पर हाँ प्रत्येक को चाहिए की वह दूसरे के सारे भाग को आत्मसात करके पुष्टि लाभ करे और अपने वैशिष्ट्य की रक्षा करते हुए अपनी निजी वृद्धि के नियम को अनुसार वृद्धि को प्राप्त हो।"

स्वामी जी के इसी कथन से हमें वह सूत्र प्राप्त होता है जो मनुष्य निर्माण में कारगर कहा जा सकता है। 'दूसरे के सार भाग को आत्मसात' करना और 'अपने वैशिष्टय की रक्षा' ये दोनों बातें भारतीय संस्कृति की उस विशिष्टता का पोषण करती हैं जिसके कारण वह आज तक जीवित है। यथार्थ मनुष्य कभी भी दूसरे से सार भाग को आत्मसात करने में परहेज नहीं करेगा। वह इस प्रकार साम्प्रदायिकता व कट्टरता से मुक्त होगा और वह अपने वैशिष्टय की रक्षा करते हुए अपने कदमों को अपनी धरती से कभी विलग नहीं होने देगा।

उपरोक्त सारे आधार उस मनुष्य के निर्माण के आधार थे जो स्वामी जी के सपनों का मनुष्य है। एक ऐसा मनुष्य जिसकी इस धरती को सदा आवश्यकता है। स्वामी जी को देखकर उनके जैसा होने की इच्छा नवयुवकों में होना स्वाभाविक है मगर स्वामी जी उस आकाश के समान हैं जिसका आदि अन्त कहीं नजर नहीं आता मगर उनके द्वारा बनाया गया पथ हमारे कदमों को अपनी धरती से कभी उखड़ने नहीं देता क्योंकि वे हमें जाग्रत होकर स्वयं इस लक्ष्य के मूर्त रूप हो जाने की शिक्षा देते हैं। यही उनका उदार व दयालु हृदय है, यही उनकी करुणा है कि वे सब कुछ लुटा देना चाहते हैं और हमें मालामाल कर देना चाहते हैं। वे हमें अपने चरित्र निर्माण के लिये किसी दूसरे पर आश्रित होने का परामर्श नहीं देते हैं वरन वे इसे हमारी सबसे बड़ी दुर्बलता कहते हैं और साफ तौर पर बताते हैं कि जब तक हम स्वयं जाग्रत नहीं होते हम किसी भी प्रकार मनुष्यता के आदर्श को क्रियान्वित नहीं कर सकते।

'उत्तिष्ठत जाग्रत'

युवाओं के लिये स्वामी जी की सम्पूर्ण शिक्षा को मात्र इन दो शब्दों में व्यक्त किया जा सकता है। "उठो। जागो" वे कहते हैं—जब तुम्हारी जीवात्मा प्रबुद्ध होकर सक्रिय हो उठेगी, तब तुम आप ही शक्ति का अनुभव करोगे, महिमा और महत्ता पाओगे, साधुता आयेगी, पवित्रता भी आप ही चली आयेगी।" पर सर्वप्रथम हमें चल पड़ने की आवश्यकता है क्योंकि मात्र हम स्वयं ही अपने भाग्य के निर्माता हैं और कोई नहीं।

"याद रखो तुम स्वयं अपने भाग्य के निर्माता हो। तुम जो कुछ सहायता या बल चाहो सब

तुम्हारे ही भीतर विद्यमान है। अतएव उस ज्ञान-रूप शक्ति के सहारे तुम बल प्राप्त करो और अपने हाथों अपना भविष्य गढ़ लो।"

स्मरण रहे कि हम प्रकाश के पथ के पथिक होना चाहते हैं और स्वामी जी हमारे लिये सूर्य के समान हैं। हम भले ही सूर्य न हो सकें मगर एक दीपक होना तो हमारी अनिवार्यता है। इसके लिये हमें तिल-तिल जलना होगा और 'त्याग व सेवा' के आदर्श की ज्योति से जीवन को आलोकित करना होगा तथा प्रतिक्षण यह प्रार्थना करनी होगी "हे गौरीनाथ! हे जगदम्बे! मुझे मनुष्यत्व दो! माँ मेरी दुर्बलता और कापुरुषता दूर कर दो— माँ मुझे मनुष्य बना दो।"

जय स्वामी जी!

देवलोक में–स्वामी अपूर्वानन्द

अनुवादक—स्वामी ज्ञानातीतानन्द, लिम्बड़ी

बाबूराम महाराज का जन्मोत्सव एवं उनकी यादें :

आज बाबूराम महाराज का जन्म दिन है। मन्दिर में विशेष पूजा एवं भोग की व्यवस्था हुई। सबेरे से महापुरुषजी बाबू राम महाराज की बातें कह रहे हैं। एक बार बोले : 'हम दोनों कई वर्षों तक इसी एक घर में दो खाटों पर रहते। जितना याद आ रहा है (१९१० ई०) तीन चार मास काश्मीर में एक साथ रहने के बाद जब मैं हिल डिसेंट्री से कष्ट पा रहा था तब वे मुझको लेकर काशी सेवाश्रम आए। वहाँ जब कुछ दिन चिकित्सा से कुछ परिणाम नहीं मिला— अस्थिचर्म मात्र रह गया, तब वे मुझको बेलूड़ मठ ले आए एवं इसी घर में अपने साथ ही रखा। स्वामी जी के स्नान घर में मिट्टी के बर्तन में शौचादि करता। यहाँ तो उस समय कोई चिकित्सा व्यवस्था नहीं थी। पका कर बेल आदि खाने से भी कोई विशेष लाभ नहीं हुआ। तब बाबूराम महाराज शरत महराज को कह कर मुझको उद्बोधन में रख कर विपिन डाक्टर की चिकित्सा कराने लगे। तब भूमानन्द ने मेरी खूब सेवा की थी--वह मैं भूल नहीं सकता। रात्रि जागरण करके, टट्टी-पेशाब साफ करके, डाक्टर के निर्देशानुसार पथ्य आदि खिला कर मेरी खूब सेवा की थी। लगभग एक महीने तक विपिन डाक्टर की चिकित्सा से कुछ ठीक होने पर, सभी ने मुझको वायु परिवर्तन के लिए कनखल में कल्याण स्वामी के पास भेज दिया. जाने के पहिले डाक्टर ने मुझे आँवले का हलुआ, बेल और कच्चे केले को उबाल कर खाने को तथा उबला भात खाने को कहा। वही अभी भी खा रहा हूँ। मरणासन्न बीमारी के समय बाबूराम महाराज का मेरे प्रति कितना गम्भीर प्रेम था, यह देखा था। वे रात-रात जाग कर मेरी सेवा करते थे। मैं तो पेट के दर्द से छटपट करता था। मेरे 'उद्बोधन' में रहते समय बाबूराम महाराज प्रायः कच्चा केला थानकूनि पत्ता आदि लेकर मुझे देखने आते एवं कितने प्रकार से दुःख प्रकट करते। उनका प्रेम का शरीर था। प्रेमानन्द नाम उन्होंने सार्थक किया था। उनकी बात क्या भूल सकता हूँ? उनका प्रेम, उनके स्नेह की कोई तुलना नहीं हो सकती। उनके देह त्यागने पर श्री श्रीमाँने रो रोकर शोक प्रकाश करते हुए ठाकुर के चरणों में सिर पटक कर कहा था, "ठाकुर तुम इतने निष्ठुर!

बाबूराम को मेरी गोद से छीन लिया? मेरा बाबूराम भक्ति-मुक्ति शक्ति रूप से बेलूड़ मठ को

प्रकाशित किये रहता था। ठाकुर के प्रेम का अंश खत्म हो गया —बाबूराम के देहत्याग से!" श्री श्री माँ की रुलाई रुकती ही नहीं थी। बाबूराम महाराज के सम्बन्ध में ठाकुर कहते हैं, "श्रीमती के अंश से जन्म, अत्यन्त पवित्र, हड्डियाँ भी शुद्ध, दरदी न होने से प्राण नहीं बचेगा"—और भी अनेक बातें।'

इस प्रकार उस दिन प्रातः काल महापुरुषजी बाबूराम महाराज के सम्बन्ध में अनेक बातें कहीं। वे मानो प्रेमानन्द के भाव में भावित होकर प्रेमानन्दमय हो गये थे।

'यही हमारे शिव, जीवन्त शिव'

सायंकाल मठ में महापुरुषजी की व्यवस्थानुसार गंगा के किनारे वरांडे में बाबूराम महाराज के सम्बन्ध में एक विवेचना-सभा का आयोजन किया गया एवं उसमें प्रेमानन्दजी के साथ घनिष्ठ सम्पर्क में आये थे ऐसे कुछ संन्यासी उपस्थित थे। महापुरुषजी एक बेंच पर बैठे थे। साधु-भक्त वरांडे में एक दरी बिछाकर उनके चरणों के पास बैठे थे। एक के बाद एक कई साधु बाबूराम महाराज के प्रेम, स्नेह और श्रीरामकृष्णामयता के सम्बन्ध में अनेक अच्छी-अच्छी बातें बोले। महापुरुष जी स्थिर होकर एकाग्रचित्त से सुन रहे थे। ललित महाराज (स्वामी कमलेश्वरानन्द) खूब भाव के साथ जब बाबूराम के प्रेम की बातें कह रहे थे तब महापुरुष जी अधिक भावाविष्ट हो गये थे। जब बाबूराम महाराज के बारे में यह सब विचार हो रहा था तब वे चारों ओर देखकर मुझको उस सभा में न देखकर एक संन्यासी से पूछा! 'क्षितीन्द्र कहाँ है? उसको बुलाओ।' मैं उसी समय महापुरुषजी के घर का कुछ जरूरी कार्य जल्दी जल्दी पूरा कर रहा था। समाचार पाकर तुरत नीचे उतर कर उनके सामने खड़े होते ही वे पूछने लगे: 'कहाँ थे? बाबूराम महाराज के सम्बन्ध में कितनी बातें हो रही है। यह सब कहाँ सुनने को मिलेगा? बैठो और सुनो।' मैं उनके पास बैठ कर सब सुनने लगा।

ललित महाराज किसी एक उत्सव में बाबूराम महाराज के मतवाले भाव का वर्णन करते हुए बोले: 'बाबूराम महाराज अचानक उठ कर खड़े होकर महापुरुषजी का आलिंगन करके बोले, "यही हमारे शिव हैं, जीवन्त शिव" एवं महापुरुषजी लेकर नाचने लगे।' स्वयं के सम्बन्ध में स्मृतिकथा सुनकर महापुरुषजी थोड़ा हँसे। इसी प्रकार उस दिन महापुरुष महाराज के सम्बन्ध में अनेक मननीय विचार हुए। विचार के बाद में जिन साधुओं ने बाबूराम महाराज की स्मृति कथा कही थी उनको सस्नेह देखने लगे। ललित महाराज जब महापुरुषजी को प्रणाम करने लगे तब उनकी पीठ थपथपा कर खूब आशीर्वाद दिया। उस समय आरती का समय हो जाने पर विचार सभा पूरी हुई। सभी आरती में गए। महापुरुषजी उस दिन आरती में नहीं गए, नीचे बेंच पर तन्मय होकर बैठे रहे।

आरती हो गई। महापुरुषजी आज बहुत थक गए। सबेरे से ही बाबूराम महाराज के भाव में मतवाले हैं। दोपहर को विश्राम नहीं हुआ। इसलिए थोड़ा विश्राम की व्यवस्था करूँगा। यह सोचकर उनको ऊपर ले गया। रास्ते में डाक्टर महाराज के साथ मुलाकात हुई। उनको दिन में प्रणाम करने का समय नहीं मिला—इसलिए संध्या के समय आये हैं। महापुरुषजी के घर में आकर बिस्तर पर बैठते ही स्वामी धर्मानन्द उनको प्रणाम करके सायंकाल की आलोचना सभा के सम्बन्ध में कहा कि, वे शाम को आ नहीं सके—इस समय बाबूराम महाराज के सम्बन्ध में दो एक बात सुनना चाहते हैं। डाक्टर स्वामी की प्रार्थना सुन कर महापुरुषजी बिस्तरे पर बैठे-बैठे ही बोलने लगे: 'यह सब बातें सभी जगह पर बोलना होता नहीं।…गाजीपुर में स्वामीजी के भीतर तब अत्यन्त विरह का भाव हुआ। ठाकुर के चले जाने से उनके विरह की ज्वाला से मानो उनके भीतर जल कर राख हो जा रहा था। ठाकुर का अदर्शन

वे और नही सह सके। बाबूराम महाराज वहाँ जाकर उनको ले आने की चेष्टा करने लगे। स्वामीजी के भीतर उस समय तीव्र विरह वेदना चल रही थी। वे (बाबूराम महाराज) बोले, "तुम यहाँ से चले जाओ। तुम्हारे साथ मेरा कोई सम्पर्क नहीं। वे तो अब नहीं है। उन्होंने निर्वाण ले लिया है। उनको लेकर ही तुम लोगों के साथ हैं। वे तो अब नहीं है। तुम सब के साथ अब मेरा सम्बन्ध खत्म हो गया है। तुम चले जाओ।" बाबूराम महाराज ने सोचा कि, पवहारी बाबा के चक्कर में पड़कर स्वामीजी ऐसा बोल रहे हैं। उनको किसी प्रकार यहाँ से ले जाने से स्वामीजी का यह भाव कट जाएगा।

इसलिए उनको वहाँ से ले आने के लिए उन्होंने प्राणपण से चेष्टा की। किन्तु स्वामीजी के भीतर वही विरह चल रहा था। इसलिए वे बोले, "ठाकुर और नहीं है; उन्होंने निर्वाण लिया है। उनको लेकर ही तुमलोगों के साथ सम्पर्क। वे तो और नहीं हैं। तुमलोगों के साथ सव सम्पर्क समाप्त हो गया। तुम चले जाओ।" किसी प्रकार उनको नहीं ला सकने पर बाबूराम महाराज रोते-रोते चले आये। और उसी रात्रि में ठाकुर ने स्वामीजी का दर्शन दिया, और उनका अन्तर शान्ति से परिपूर्ण हो गया। उसके बाद स्वामीजी गाजीपुर से चले आये और आकर गुरुभाइयों से मिले।' डाक्टर महाराज सव सुन कर प्रसन्न होकर बोले: 'तभी तो ठाकुर की जय हुई। ठाकुर तो सब कुछ जानते थे, वे मात्र स्वामीजी के मन की परीक्षा ले रहे थे। यही कह कर वे महापुरुषजी को भक्तिपूर्ण प्रणाम करके चले गए। महापुरुषजी तब थोड़ा लेट कर विश्राम करने लगे।

-: महापुरुषजी की करुणा :-

मलेरिया-बिध्वस्त बेलूड़ ग्राम में उन दिनों (१९१८-२५) केवल कुछ घर ही बसे हुए थे। उनमें से दो ब्राह्मण परिवार ठाकुर के भक्त। सुरेन भट्टाचार्य, बेलूड़ खेयाघाट के पास उनका घर—ठाकुर के अनन्य भक्त लेकिन दरिद्र। सालकिया आदि स्थानों में बेलूड़ मठ के स्वामी प्रेमानन्द महाराज आदि को लेकर खूब भव्यतापूर्वक प्रति वर्ष उत्सव करते। पूजा का फूल तोड़ने के लिए रोज मठ में भी आते, ठाकुर और महापुरुजीजी को प्रणाम करते। विशेष किसी जरूरी काम से काशी में जाकर उनकी मृत्यु हो गई। ठीक इसी समय उनकी स्त्री ने सन्तान प्रसव किया। उनकी सभाल लेनेवाला कोई नहीं था, मा अन्तःपुर में थी। बड़े लड़के की उम्र मात्र सात-आठ वर्ष की थी। रजनी बाबू (मठ के अवैतनिक कर्मचारी) ने काशी में सुरेन बाबू की अचानक मृत्यु और अन्यान्य समाचार महापुरुषजी को दिया सब सुनकर वे गम्भीर चिन्तमग्न हो गये।

दूसरे दिन प्रातः आठ के बाद सुरेन बाबू का बड़ा लड़का पहाड़ी (बुलाने वाला नाम) छोटे भाई का हाथ पकड़ कर मठ के मैदान में आकर जोर-जोर से रोने लगा। पिछली रात से सभी भूखे थे, कुछ खाने को नहीं मिला। महापुरुष महाराज पहाड़ी का रोना सुनकर नीचे उतर आए और नीचे खड़े होते ही पहाड़ी महापुरुषजी का चरण पकड़ कर—'हमलोगों को खाना दीजिए' कह कर रोना प्रारम्भ कर दिया। महापुरुषजी पहाड़ी को सांत्वना देकर बोले: 'तुमलोग बरतन लेकर आओ। ठाकुर का भोग उतरने पर तुम लोगों के लिए दोनों समय का भोजन भेज दूँगा।' साथ ही साथ वे नीलकण्ठ महाराज को बुलाकर बोले: 'देखो नीलकण्ठ, सुरेन बाबू काशी में जाकर मर गये हैं। उनके लड़के बच्चों को बचाओ। बहुत दुख में पड़े हैं। उनके मुख में थोड़ा सा अन्न देने वाला कोई नहीं है, मा प्रसव घर में है। तुम कुछ दिन तक उन सभी को दो समय के लिए पर्याप्त अन्न-प्रसाद सुरेन बाबू के घर पहुँचा देना। पहाड़ी बरतन लेकर आयेगा, वही उसको सिर पर लेकर

जाएगा, तुम साथ में जाकर उसके घर में दोपहर को प्रसाद पहुँचा देना।' नीलकन्ठ स्त्री के घर जाने में संकोच प्रकट करने लगे, महापुरुषजी रोते-रोते स्वर में बोले : 'ठाकुर का दरिद्र परिवार। बहुत दुःख में पड़ा है। छोटे-छोटे बच्चे बिना खाये मर जाएँगे। तुमको कोई भय नहीं, जाओ। घर में माँ-बहिन तो थी न ? इनलोगों को उसी प्रकार देखना। कुछ सप्ताह तक उनलोगों की इसी प्रकार सेवा करो। तुम्हारा कल्याण होगा। मैं कहता हूँ, तुम्हारा कल्याण होगा। मैं ठाकुर की सन्तान हूँ। हमलोग किसी साधू को किसी कार्य के लिए भेजने पर उसके कल्याण-अकल्याण का दायित्व सब हम लोगों का।' नीलकण्ठ ने सिर नीचा करके महापुरुष जी का निर्देश मान लिया एवं आठ-दस दिन तक सुरेन बाबू के बड़े लड़के को साथ लेकर दोपहर में उनलोगों को भोजन पहुँचा कर महापुरुषजी को समाचार देते। पहाड़ी बरतन सिर पर लेकर जाता, नीलकण्ठ साथ में जाते। इसके बाद भी महापुरुष महाराज सुरेन बाबू के श्राद्ध और बाल बच्चों के खाने पीने के लिए कुछ कुछ सहायता भेज देते।

★

प्रेरक प्रसंग

मनुष्यता

पांडिचेरी के अरविन्द आश्रम की माताजी के पास एक फ्रांसीसी युवक पहुँचा। वह युवक बहुत ही जोशीला था और लड़ने-मरने के लिए सदा ही तैयार रहता था। यों देखने में वह था भी बड़ा तगड़ा। माताजी, जो कि उसके स्वभाव से परिचित थीं, बोलीं—यह बताओ कि मुक्के के बदले मुक्का मारना कठिन काम है या मुक्के के बदले अपना हाथ अपनी जेब में डाल लेना कठिन काम है ?

उस युवक ने कुछ सोचा फिर बोला—मुक्के के बदले मुक्का तो तुरन्त मारा जा सकता है, यह तो आसान काम हुआ। मुक्के के बदले हाथ जेब में डाल लेना, निश्चय ही कठिन काम है।

—शाबास, अच्छा अब यह बताओ कि तुम जैसे नौजवान और तगड़े युवक को आसान काम करने चाहिए या कठिन काम ?

युवक फिर सोचने लगा और बोला--अवश्य ही कठिन काम करने चाहिए।

—यह भी ठीक है, अब यह बताओ कि आज के बाद तुम कौन-सा काम करना पसन्द करोगे ? मुक्के का जवाब मुक्के से दोगे या बदले में हाथ जेब में डाल लोगे ?— मुस्करा कर माताजी ने पूछा।

युवक माताजी के तर्क-जाल में आ चुका था, लेकिन वहाँ उसे सत्य के प्रकाश का दर्शन हुआ। वह बोला—अब हाथ मेरी जेब में रहेंगे। मैं नौजवान हूँ और कठिन काम ही करूँगा। यह कहकर तथा माताजी को प्रणाम करके वह नौजवान वहाँ से चला गया।

अगले दिन वह खुशी से नाचता हुआ माताजी के पास आया और बोला—आज एक व्यक्ति क्रोध में आकर गाली दे बैठा। पर मेरा डीलडौल देखकर घबराकर आत्मरक्षा के लिए लड़ने को तैयार हो गया, लेकिन मैंने अपने हाथ जेब में डाल लिए, फिर वह मेरे पास आया और मैंने हाथ निकाल लिए।

—फिर क्या किया तुमने ?—चौक कर माताजी ने पूछा।

—फिर मैंने उसका हाथ अपने हाथ में लिया और हाथ मिला लिया।

नौजवान का उत्तर सुनकर माताजी प्रसन्न हुईं। उन्होंने उसकी कमर थपथपाते हुए कहा—तुम सच्चे नौजवान हो। क्रोध को पी लेना ही मनुष्यता है।

★

एक निवेदन

भगवान श्री रामकृष्णदेव, माँ सारदा तथा स्वामी विवेकानन्द के चरण रेणु से तीर्थीकृत तथा स्वामी विवेकानन्द स्मृतिविजड़ित आकर्षण केन्द्र ज्योति लिंग बाबा वैद्यनाथ की इस पुनीत नगरी देवघर में रामकृष्ण संघ द्वारा परिचालित प्रथम शिक्षण संस्थान रामकृष्ण मिशन विद्यापीठ की स्थापना सन् 1922 में हुई। भगवान श्री रामकृष्ण देव के अन्यतम पार्षद श्रीमत् स्वामी तुरीयानन्दजी महाराज से अनुप्राणित तथा स्वामी विवेकानन्द के शिक्षादर्शों पर आधारित 75 वर्ष पूर्व प्रारम्भ की गई यह शिक्षण सस्थान आज पूरे भारतवर्ष में विख्यात है। रामकृष्ण संघ के द्वितीय अध्यक्ष परमपूजनीय श्रीमत्स्वामी शिवानन्दजी महाराज ने भविष्यवाणी की थी—'इस विद्यापीठ के माध्यम से भविष्य में बहुत महान कार्य सम्पन्न होगा, इसका भविष्य बड़ा ही उज्ज्वल है।'

विद्यापीठ के बहुमुखी कर्म-प्रवाह में आर्थिक अवस्था से विपन्न 400 छात्रों के लिए आज 'विवेकानन्द बालकेन्द्र' मुख्य इकाई के रूप में कार्यरत है जिसमें निःशुल्क शैक्षिक तथा क्रीड़ा संबंधी एवं व्यावसायिक प्रशिक्षण की व्यवस्था है। इस अनुन्नत वर्ग को ही नवीन भारत का आधार बनाते हुए स्वामीजी ने कहा था—

"एक नवीन भारत निकल पड़े। निकले हल पकड़कर, किसानों की कुटी भेदकर, मछुए, माली, मोची, मेहतरों की झोपड़ियों से। निकल पड़े बनियों की दुकान से, भुजवा के भाड़ से, कारखाने से, हाट से, बाजार से। निकले झाड़ियों से, पहाड़ों—पर्वतों को भेदते हुए।' इस वाणी को मद्देनजर रखते हुए 'सबसे पीछे पड़े हुए, सबसे नीचे दबे हुए' वर्ग को अपने विनम्र भाव से शिक्षित करने के प्रयास में 'विवेकानन्द बाल केन्द्र' अनवरत संलग्न है।

संप्रति इन छात्रों की यथोक्त शिक्षा के लिए एक स्थायी भवन की नितान्त आवश्यकता है जिसकी अनुमानित लागत 10 लाख रुपये है। अतः रामकृष्ण मिशन विद्यापीठ, देवघर की ओर से मैं इस महान एवं पवित्र कार्य को सम्पन्न करने के लिए आप उदारचेताओं से सहयोग की महती प्रार्थना करता हूँ। इति।

निवेदक
स्वामी सुवीरानन्द
सचिव
रामकृष्ण मिशन विद्यापीठ, देवघर

नोट :—1. रामकृष्ण मिशन विद्यापीठ, देवघर के नाम से ही चेक या ड्राफ्ट भेजे जाएँ।
2. रामकृष्ण मिशन को दिया गया दान धारा 80 [G] के अनुसार आयकर मुक्त है।
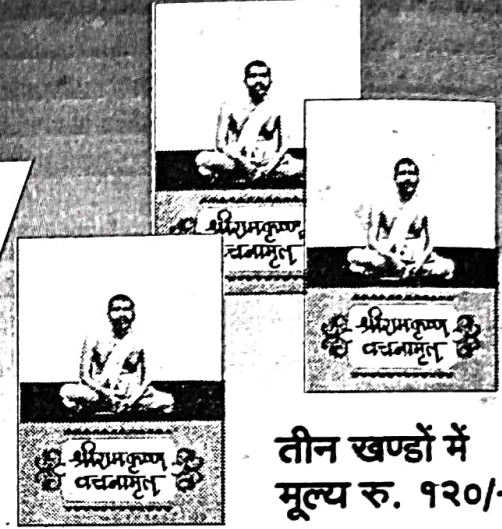
श्रीमती गंगा देवी, जयप्रकाश नगर, छपरा (बिहार) द्वारा प्रकाशित एवं शिवशक्ति प्रिन्टर्स, सैदपुर, पटना-४ में मुद्रित।